दो शब्द

गांधीजी तथा उनके बाद के रचनात्मक कार्यों तथा संस्थाओं पर अलग-अलग कुछ पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं, किन्तु उन सबके सम्बन्ध में कोई एक पुस्तक नहीं है। इस आवश्यकता की, इस पुस्तिका में संक्षेप में पूर्ति का प्रयास किया गया है। ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि कुछ संस्थाओं तथा प्रवृत्तियों का परिचय छूट गया हो, और कुछ का अपूर्ण हो। अगले संस्करण में उनकी पूर्ति का प्रयास किया जायेगा।

इस पुस्तिका को तैयार करने का काम जयपुर के कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य शोध संस्थान के डा० अवध प्रसाद को सौंपा गया था, और उन्होंने उनको उपलब्ध सामग्री के अनुसार एक पाण्डुलिपि तैयार करके भेजी थी। उसमें संशोधन तथा परिवर्तन के साथ यह पुस्तिका केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि ने तैयार की है। उनको भी जो कुछ सामग्री तथा जानकारी मिल सकी, उसी का समावेश इसमें किया जा सका है।

इसके अतिरिक्त इस पुस्तिका में एक भूमिका द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार रचनात्मक कार्य तथा विचार का लक्ष्य 'ग्राम स्वराज्य' रहा है।

—प्रकाशक

विषय सूची

भूमिका

ग्रामस्वराज की ओर

डा० विश्वनाथ टण्डन

प्रचलित पश्चिमी लोकतंत्र के बारे में गांधीजी की राय अच्छी नहीं थी। वह वर्तमान संसदीय पद्धति को लोकतंत्र का व्यभिचार मानते थे। जहां तक भारत का सम्बन्ध है वे ऐसे लोकतंत्र के समर्थक थे जो भारतीय परंपराओं और चरित्र के अनुकूल हो। अतः उनका ध्यान भारत की प्राचीन पंचायत व्यवस्था की ओर गया था, जिसके अवशेष तो तमिलनाडु प्रदेश में पिछली शती के प्रारम्भ में भी सक्रिय दशा में मिलते थे। एक ग्रामीण देश होने के नाते भारत के स्वराज्य की उनकी कल्पना 'ग्रामस्वराज्य' की थी। जनवरी १९४८ में उन्होंने कहा था, "सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे हुए २० आदमियों से नहीं चल सकता। उसे हर गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा।" इस बात का मेल उनके १९२५ के एक कथन के साथ था जिसमें उनका कहना था, "स्वराज्य का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिए सतत प्रयत्न करना, फिर वह नियन्त्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। यदि स्वराज्य हो जाने पर लोग अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिए सरकार का मुंह ताकने लगें, तो वह स्वराज्य सरकार किसी काम की नहीं होगी।"

गांधीजी ने अपने ग्रामस्वराज्य का चित्रण विशदता के साथ कभी नहीं किया, क्योंकि उनको उसकी आवश्यकता नहीं लगी थी और वे इस सिद्धांत के मानने वाले थे कि 'मेरे लिए एक पग ही पर्याप्त

हैं। फिर भी उनके कथनों में एक रूपरेखा तो मिल ही जाती है। १९४२ में उन्होंने लिखा था, "ग्रामस्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा—वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी सुरक्षित भूमि होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गांवों के बड़े व बच्चों के लिए मन बहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, यों वह गांजा, तम्बाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा।

"हर गांव में गांव की अपनी एक नाटक-शाला, पाठशाला और सभाभवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इंतजाम होगा। वाटर-वर्क्स होंगे, जिससे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहां तक हो सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे।

"सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बल होगी। गांव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गांव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। इसके लिए गांव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा जायेगा। गांव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी।...इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे।

चूंकि इस ग्रामस्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा और दण्ड का कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिए वह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा का काम संयुक्त रूप से करेगी।

"यहां मैंने इस बात का विचार नहीं किया है कि इस तरह के गांव का अपने पास-पड़ोस के गांवों के साथ या केन्द्रीय सरकार के साथ, अगर वैसी कोई सरकार हुई तो, क्या सम्बन्ध रहेगा। मेरा हेतु तो ग्राम-शासन की एक रूपरेखा पेश करने का ही है। इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला संपूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम के वश होकर चलेंगे। अपने गांव के साथ वह सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबला कर सकेगा।"

इसी विचार को एक अन्य तरीके से गांधीजी ने १९४६ में रखा था। उन्होंने कहा था, "आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हरएक गांव में जमहूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हरएक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा—अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके।

"ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। यहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा।"

गांधीजी मानते थे कि जमीन जोतने वाले किसान की ही होनी चाहिए। यह गलत है कि वह किसी ऐसे मालिक या जमींदार की हो

जो घर बैठ कर खेती कराने वाला हो। किन्तु जहाँ तक स्वामित्व का सम्बन्ध है उनका यह भी कहना था कि 'सबै भूमि गोपाल की'। आधुनिक भाषा में इसका अर्थ वे स्वयं यह लगाते थे कि गोपाल यानी राज्य यानी जनता। अर्थात् सब जमीन पर जनता का स्वामित्व माना जाय। उन्होंने लिखा है, "इसमें कोई संदेह नहीं कि इस आदर्श को जिस हद तक रूस या कोई और देश पहुँच सकता है उस हद तक हम भी पहुँच सकते हैं।"

गांधीजी सहकारिता के बड़े समर्थक थे। उनका मानना था कि 'आज संसार हरएक काम में सामुदायिक रूप से शक्ति का संगठन करने की ओर जा रहा है'। वे जोतने, बोने तथा फसल काटने का काम मिल-जुल कर करने के पक्ष में थे। उनकी योजना में श्रम-सिक्के को मान्यता दी गयी थी। वे प्रचलित धातु के सिक्के के स्थान पर श्रम-सिक्के को लागू करना चाहते थे। इस आपत्ति में उनको सार नहीं मिला था कि इसका परिणाम वस्तु के बदले वस्तु बदलने की पुरानी पद्धति को लौटना होगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी तो इसी पद्धति पर आधारित है।

यह ग्रामस्वराज्य गांधीजी के लिए एक लक्ष्य अवश्य था किन्तु उनके सम्मुख तत्कालीन समस्या देश के पीड़ित लोगों को राहत देने की तथा देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने की थी। देश और समाज के पुनर्निर्माण के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता पहली अनिवार्यता थी फिर भी, गांधीजी ने ग्रामस्वराज्य के लक्ष्य को अपनी दृष्टि से कभी ओझल नहीं किया था, और उनका कोई कार्य उसका विरोधी नहीं था। गांधीजी किस प्रकार इस दिशा में आगे बढ़ रहे थे, यह चर्खा संघ के इतिहास से स्पष्ट हो जाता है। १९३३ तक खादी-कार्य की दृष्टि गरीबों और असहायों को राहत देने की थी। उसके बाद जीवन-निर्वाह मजदूरी के सिद्धान्त को अपनाकर उसमें सामाजिक न्याय अथवा नैतिक अर्थशास्त्र की बात जोड़ दी गयी। १९४४ के बाद मुख्य बल

इसपर रहा कि कार्यकर्ता गांव में बैठकर समग्र दृष्टि से कार्य करें। खादी के काम का विकेन्द्रीकरण भी प्रारम्भ कर दिया गया था। गांधीजी के १८ रचनात्मक कार्यक्रमों में कई कार्य ग्रामस्वराज्य की दिशा में ले जाने में सहायक थे। नयी तालीम का उनमें प्रमुख स्थान था। गांधीजी इसको मौन सामाजिक क्रान्ति का एक बलवान साधन मानते थे और उनको यह आशा थी कि यह नगरों तथा ग्रामों के पारस्परिक संबंधों के लिए एक स्वस्थ तथा नैतिक आधार प्रदान करेगी।

यहां और एक बात को स्पष्ट करना आवश्यक लगता है। गांधीजी के युग में सरकार का व्यक्ति तथा समाज के जीवन में उतना हस्तक्षेप नहीं था जितना आज है। इसके कई कारण थे। प्रथम, कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का जन्म १९३० के बाद का है। दूसरे, भारत में अंग्रेजी राज्य अधिकांश में 'पुलिस राज्य' ही था। जन-कल्याण के कार्यों से सरकार यथासंभव दूर ही रहती थी। उसको यह भय भी रहता था कि व्यक्ति और समाज के जीवन में हस्तक्षेप से कहीं जनता का विरोध तीव्रतर न हो जाय। अतः वह अपनी सुरक्षितता इसी में समझती थी कि जन-जीवन जैसा चल रहा है, उसको वैसा ही चलने दिया जाय और निहित स्वार्थों को छुआ न जाये। अतः उस युग में राज्य की सत्ता का उतना केन्द्रीकरण नहीं हुआ था जितना आज है। द्वितीय महायुद्ध के काल में सरकार को परिस्थिति-वश आर्थिक नियंत्रण लगाने पड़े थे, किन्तु उस समय यह विश्वास सभी का था कि ये युद्धकाल के लिए ही हैं और उसकी समाप्ति के बाद स्थिति फिर वही पुनः आ जायेगी जो युद्ध के पूर्व थी। इसी कारण स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में इन नियंत्रणों का विरोध गांधी-विचार के मानने वालों ने किया था, और बहुत से नियंत्रण नेहरू-सरकार ने समाप्त भी किये थे। उस समय तक इसका भान नहीं था कि ये आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन के स्थायी अंग बनने जा रहे हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के कुछ ही महीनों बाद गांधीजी के जीवन

का भी अन्त हो गया, और एक नये युग का सूत्रपात हुआ। नयी परिस्थितियों में गांधीजी के रचनात्मक कार्यों में विश्वास रखने वालों ने नये समाज के निर्माण हेतु क्या-क्या किया इसका वर्णन इस पुस्तिका के अन्तिम अध्यायों में है। कुछ पुराने कार्य तो पुरानी लीक पर ही चलते रहे, और कम या अधिक मात्रा में सरकार के ऊपर निर्भर हो गये। उनमें पुरानी क्रान्ति-भावना का भी लोप हो गया, क्योंकि गांधीजी के काल में वे लोकशक्ति पर आधारित थे, अब उनका आधार, कम-से-कम आर्थिक दृष्टि से तो, राज्य शक्ति ही बन गया था। स्वतन्त्र भारत की सरकारों ने उनको सहायता देना अपना धर्म माना था, और स्वयं वह काम करने के लिए अथवा उसमें सहायता देने के लिए उन्होंने अपने प्रशासन में उपयुक्त विभागों की भी स्थापना की थी। इससे ऐसे कार्यों में लगे रचनात्मक कार्यकर्ताओं की स्थिति सरकारी सेवकों से बदतर ही होती जा रही थी। ऐसे समय में विनोबाजी के भूदान आन्दोलन का जन्म हुआ था और उसके लिए देश में वैसा ही उत्साह जाग्रत हुआ जैसा गांधीजी के सत्याग्रह-काल में देखने को मिलता था।

विनोबाजी प्रणीत भूदान-ग्रामदान आन्दोलन की भूमिका प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी रही है। यह लोकशक्ति पर आधारित है और सरकार से यथासम्भव स्वतन्त्र रहने का इसका प्रयास रहा है। इसका ध्येय देश को गांधीजी द्वारा इंगित ग्रामस्वराज्य की ओर ले जाने का है। इसके नेता सदैव इसपर बल देते रहे हैं कि अभी तो स्वराज्य दिल्ली तक ही आया है। उसको ग्रामों में ले जाने का काम करना है। इसके लिए कभी-कभी ग्रामस्वराज्य शब्द का प्रयोग न करके 'ग्रामराज' शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। बात वही है, केवल छोटा होने से 'ग्रामराज' शब्द अधिक सुविधाजनक रहा है।

भूदान-ग्रामदान आन्दोलन का वर्णन इस दृष्टि से कि कैसे वह ग्रामस्वराज्य का ही आन्दोलन है, करने के पूर्व इसका उल्लेख उचित

लगता है कि किस प्रकार वर्तमान सर्वोदय नेताओं अथवा विचारकों ने गांधीजी के ग्रामस्वराज्य-विचार का विशदीकरण करके उसको आगे बढ़ाया है। इन सभी का प्रारम्भ से इसपर बल रहा है, जैसा पहले कहा जा चुका है, कि देश के ब्रिटिश शासन से मुक्त हो जाने से अभी 'स्वराज्य' पूरे रूप से प्राप्त नहीं हुआ है। वह अभी तो केवल लंदन से दिल्ली तक ही पहुँचा है, अब उसको दिल्ली से ले जाकर गाँव-गाँव पहुँचाना है।

गांधीजी की ही भांति, वर्तमान सर्वोदय विचारक प्रचलित औपचारिक लोकतन्त्र के आलोचक हैं, यद्यपि उनको यह बात स्वीकार है कि अभी तक मानव ने जितने प्रकार के शासनतन्त्र स्थापित किये हैं उनमें लोकतन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। उनको इस बात का खेद रहा है कि स्वाधीनता के पश्चात् देश ने भारतीय जनता के मानस तथा प्रतिभा के अनुकूल लोकतंत्र स्थापित न करके पश्चिमी ढंग की संसदीय प्रणाली अपनायी है। उनके अनुसार प्रचलित लोकतन्त्र का मूल दोष यह है कि उसमें समाज के जीव-स्वभाव (ऑरगेनिक नेचर) की अवहेलना की गयी है। दूसरे, यद्यपि यह तन्त्र कहने के लिए शासितों की सहमति पर आधारित है, किन्तु इसका अन्तिम विश्वास पुलिस तथा सेना पर ही है। तीसरे, यह लोकतन्त्र पूंजीवाद की नींव पर निर्मित है, और इसका प्रयास उसके अधिकारों तथा सम्बन्धों को बनाये रखने का ही होता है। इसके अतिरिक्त पूंजीवाद के कुछ पैतृक दोष भी इसमें मिलते हैं। जीवन-स्तर को निरन्तर ऊपर उठाने की वासना इसमें भी पायी जाती है, जिसके फलस्वरूप जनता उन्हीं लोगों का समर्थन करती है जो उसको इस वासना-पूर्ति की आशा दिलाते हैं। साथ ही, यह तन्त्र होड़ के सिद्धान्त पर आधारित है। इन दोनों का परिणाम यह होता है कि 'लोक-कल्याण' की अनिवार्य आवश्यकता के कारण नौकरशाही शासन की स्थापना होती है और समाज में वर्ग-द्वेष तथा कलह बढ़ता है। चौथे, इस तन्त्र में कहने भर के लिए सत्ता जनता के हाथ

में है। एक वार निर्वाचित हो जाने पर प्रतिनिधि स्वतन्त्र-से हो जाते हैं। उनपर जनता का नियन्त्रण न रहकर उनके दल का नियंत्रण स्थापित होता है। यह सोचना भी व्यर्थ है कि मतदाता उनको अगले चुनाव में हटाकर राज्य की नीति में परिवर्तन करा सकते हैं। इस युग में पांच वर्ष पचास वर्ष के वरावर हैं और अपने काल के पांच वर्षों में कोई भी सरकार इतना और इस प्रकार का कार्य कर सकती है कि नयी सरकार के सामने केवल यही विकल्प हो कि वह पुरानी नीति को वनाये रखे।

ये कुछ आलोचनाएं हैं, किन्तु इन विचारकों का अधिकतर वल आज की लोकशाही के खर्चीले स्वभाव, नौकरशाही का वोलवाला तथा लोकतन्त्र की औपचारिकता पर है। फिर भी आज जनता में उसके लिए आकर्षण है। वजाय अपने हाथ-पैर हिलाने के वह सरकार द्वारा ही लोक-कल्याण के कामों को करना अधिक पसन्द करती है। इसीलिए श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने इसको 'लोतन्त्र' न कहकर 'लोकपसंद तन्त्र' कहा है। ये सर्वोदय विचारक आवश्यक यह मानते हैं कि 'तन्त्र' पर से वल हटाकर 'लोक' पर वल दिया जाय। इसके लिए उनको लगता है कि हमको अब्राहम लिंकन की परिभाषा पर वापस जाना पड़ेगा, जिसमें लोकतन्त्र को 'जनता द्वारा जनता के लिए जनता का शासन' वताया गया है, और प्रातिनिधिक लोकशाही के स्थान पर सामुदायिक अथवा साझेदारी के लोकतन्त्र (कम्यूनिटेरियन अथवा पारटीसिपेटिंग डेमोक्रेसी) की स्थापना करनी पड़ेगी। इसको वह कोई आकाश-कुसुम न मानकर, सम्भव मानते थे। इस साझेदारी के लोकतन्त्र की नींव में 'ग्राम-स्वराज्य' होगा। विनोवाजी का विश्वास है कि भविष्य में केवल दो ही स्तर की पंचायतें रह जायेंगी—ग्रामपंचायत और विश्वपंचायत। वीच की पंचायतों का—जिला, प्रादेशिक और राष्ट्रीय पंचायतों का—स्थान धीरे-धीरे गौण वनता जायेगा। सर्वोदय विचारकों का कहना है कि भले आज की स्थिति में 'ग्रामस्वराज्य' की स्थापना ऊपर के कानून से

की जाय, किन्तु दृष्टि यही रहनी चाहिए कि सही सिद्धान्त यही है कि ग्रामपंचायतों को ऊपर से शक्तियां प्राप्त न होकर, उच्च संस्थाओं को उनके अधिकार नीचे की संस्थाओं द्वारा प्राप्त होने चाहिए।

ग्रामस्वराज्य का राजनीतिक ढांचा कैसा होना चाहिए, इस दिशा में पहला प्रयास श्रीमन्नारायण ने गांधीजी के जीवनकाल में ही अपनी पुस्तक 'भारत के लिए एक गांधीवादी संविधान' में किया था किन्तु लोगों का ध्यान उसकी ओर नहीं गया था। इसका कारण संभवतः यह था कि देश के बंटवारे के कारण सबको यह अनिवार्य लगता था कि केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली होनी चाहिए, नहीं तो देश में फूट पैदा करनेवाली शक्तियां बलशाली हो जायेंगी, और गांधीजी की कल्पना की विकेन्द्रित सरकार दुर्बल समझी गयी थी। इसी कारण तो संविधान की पहली प्रस्तावित रूपरेखा में डा० अम्बेडकर ने गांधीजी के विचारों की अवहेलना की थी, ग्रोर बाद में कुछ संविधान-निर्माताओं के बहुत जोर देने पर ही पंचायतों को राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में स्थान दिया था। किन्तु संविधान बन जाने और लागू हो जाने के बाद जैसे-जैसे अनुभव के आधार पर, प्रचलित लोकतन्त्र के दोष सामने आने लगे, उसमें सुधार की ओर विचारकों का ध्यान जाने लगा। यह अवश्य है कि जहां कुछ लोगों ने अध्यक्षीय शासनतन्त्र की मांग की, गांधी-विचार से प्रेरित लोगों ने 'ग्रामस्वराज्य' की बात की। जयप्रकाश नारायण ने तो एक रूपरेखा भी तैयार की, जिसकी विद्वानों में बहुत चर्चा रही थी।

श्री जयप्रकाश नारायण का प्रस्तावित ढांचा कोण स्तूप के आकार का है, जिसका आधार एक ग्रामसभा और उसके द्वारा चुनी एक कार्यकारिणी है। इस कार्यकारिणी को पंचायत का नाम दिया गया है और इसका काम सर्वसम्मति से गांव का प्रबन्ध करना है। ग्रामसभा के हाथ में राज्य की सभी शक्तियां होंगी। यह गांव के आयात तथा निर्यात का नियमन कर सकेगी। इसी को शिक्षा, चिकित्सा तथा न्याय

की व्यवस्था करनी होगी। कई प्राथमिक ग्राम-पंचायतों को मिलाकर क्षेत्रीय पंचायत बनेगी जो क्षेत्र की सामान्य समस्याओं को हल करने तथा सामान्य ध्येयों को प्राप्त करने की चेष्टा करेगी। इस स्तर पर और संस्थाएँ भी होंगी जो ग्राम-सस्थाओं द्वारा किये गये कामों से ऊपर के कार्य करेंगी। इन क्षेत्रीय संस्थाओं को ग्रामस्तर की संस्थाओं के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं होगा। नीचे के संघटनों को अपने अधिकार तो ऊपर से प्राप्त होंगे किन्तु वे अपने क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न होंगे। क्षेत्रीय संघटनों द्वारा जिले के संघटनों का संघ बनेगा, और इसी प्रकार प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय संघटनों का निर्माण होगा। राष्ट्रीय पंचायत वैदेशिक सम्बन्धों, मुद्रा, आयात तथा निर्यात का नियमन, अन्तर्प्रादेशिक सामंजस्य तथा विधिनिर्माण की ओर ध्यान देगी। इस प्रकार राजनैतिक ढांचा नीचे से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर चलेगा।

इस सन्दर्भ में राज्यों के पुनर्गठन पर अभी निकट में श्री रा० कृ० पाटील, जो इस वर्ष सर्वोदय सम्मेलन में अध्यक्ष थे, के कुछ विचार प्रकाशित हुए हैं जो उल्लेखनीय हैं। भाषावार प्रान्तों में कुछ क्षेत्रों के, जैसा—तेलंगाना, झारखण्ड आदि के, पृथक्तावादी आन्दोलन ने उनको इस दिशा में सोचने को प्रेरित किया है कि जिला—आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होना चाहिए। प्रत्येक जिले में एकसदनीय व्यवस्थापिका हो तथा मंत्रिपरिषद् हो और जिलाधीश उनके मुख्य सचिव के रूप में काम करे। कुछ बातों के लिए प्रान्तीय स्तर रहे। किन्तु राज्य-सूची के सभी विषयों पर विधि-निर्माण का काम जिला-व्यवस्थापिका को हो। मण्डल के स्तर पर अन्तर्जिला परिषद् हो जिसकी अध्यक्षता प्रान्त का मुख्यमन्त्री करे तथा मण्डलाधीश सचिव का काम करे। जिला सरकार की नींव में स्वशासित पंचायतें हों जिनके अन्तर्गत १५ से २५ हजार जनसंख्या का क्षेत्र आता हो। जिला सरकार का प्राथमिक प्रकार्य इन पंचायतों को स्वशासित बनने तथा

अपने कार्यों का विस्तार करने के लिए प्रोत्साहन देना होगा। पांच लाख से अधिक आबादीवाले नगरों को जिला शासन से अलग रखकर केन्द्र से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखा गया है। ग्रामों में म्युनिसिपालिटी के कार्य पंचायतें ग्रामसभाओं के माध्यम से करेंगी।

यह तो है कल्पित राजनीतिक ढांचे की बात जिसके बारे में कोई अन्तिम शब्द नहीं कहे गये हैं, किन्तु इस स्वायत्तता के वास्तविक सिद्ध होने के लिए यह अनिवार्य है कि ग्राम आर्थिक दृष्टि से भी स्वावलम्बी हों। गांधीजी ने इसपर बल दिया है और यही वर्तमान सर्वोदय विचारकों के बारे में है। गांवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनका कहना है कि गांवों में सन्तुलित खेती होनी चाहिए और ग्राम-निवासियों को अपने ग्राम में बनी वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिए। सहकारिता पर जोर देते हुए उनका कहना है कि गांव वालों के क्रय-विक्रय के लिए उनकी अपनी सहकारी दुकान होगी। विनोबाजी का एक सुझाव यह भी रहा है कि गांव के क्षेत्र में प्रचलित मुद्रा के स्थान पर श्रम-हुंडियों का चलन होना चाहिए। दूसरे गांवों के साथ व्यापार में प्रचलित मुद्रा का उपयोग किया जा सकता है। सामान्य वस्तुओं के मूल्य निर्धारित होने चाहिए। ग्राम-दुकान में प्रत्येक गृहस्थ के 'श्रम-घंटे' एक रजिस्टर में उसके खाते में जमा कर दिये जायं और उनके बदले में आवश्यक वस्तुएँ खरीदने का अधिकार दिया जाय। यह दूकान एक सहकारी समिति द्वारा चलनी चाहिए और वह समिति गांव वालों के लिए अनाज तथा उनके उद्योगों के लिए कच्चा माल रखे, गांव के अतिरिक्त उत्पादन को बेचने का प्रबन्ध करे, तथा गांव में बीज, खाद, सुधरे औजार इत्यादि के प्रसार तथा बेचने की व्यवस्था करे। गांव की भूमि की मालगुजारी ग्राम परिषद् ही वसूल करके सरकार को देगी।

किन्तु 'ग्रामस्वराज्य' केवल इतने से भी होने वाला नहीं है। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि ग्राम के निवासियों में भाईचारा

हों, उनमें नागरिकता की भावनाएँ हों, संकुचित स्वार्थवृत्ति तथा ऊँच-नीच की भावना न हो। इसके लिए सर्वोदय विचारकों ने आर्थिक तथा सामाजिक समता पर, सर्वधर्म-समभाव पर, अस्पृश्यता-निवारण और स्त्री-शक्ति पर, शरीरश्रम पर तथा अपरिग्रह-वृत्ति पर बल दिया है। ये सब समाज के विभिन्न वर्गों में एकता की भावना निर्माण करने वाले हैं। विनोबाजी की तो यह भी कल्पना है कि गाँव में विवाह गाँव के खर्चे पर ही होने चाहिएँ।

यह सब विचार की दृष्टि से 'ग्रामस्वराज्य' की ओर ले जाने वाली प्रगति का सूचक है। किन्तु इस विचार का विकास तो भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के प्रथम दशक में ही प्रधान रूप से हो गया था। आज मुख्य प्रश्न तो इस दिशा में व्यावहारिक रूप से आगे बढ़ने का है। अतः आन्दोलन के साथ-साथ मुख्य चिन्तन इसका चल रहा है कि इसके लिए क्रान्ति की अहिंसात्मक प्रक्रिया का रूप क्या होना चाहिए जिससे ग्रामस्वराज्य का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

भूदान आन्दोलन का प्रारम्भ कैसे भी हुआ हो, इस आन्दोलन की प्रगति के साथ उसका वैचारिक विकास हुआ और जैसा कि स्वाभाविक है उसका सुदूर लक्ष्य ग्रामस्वराज्य की स्थापना ही रहा। ग्रामस्वराज्य के लिए प्रथम चरण के रूप में यह अनिवार्य है कि ग्राम में एकता हो, अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए ग्राम में अपने पैरों पर खड़े होने की वृत्ति तथा शक्ति हो तथा ग्राम के प्रशासन के संचालन और झगड़ों का वहीं फैसला कर देने की इसमें क्षमता हो। आज का भूदान-ग्रामदान आन्दोलन इसी के लिए उपयुक्त वातावरण तथा परिस्थिति निर्माण करने, और शैक्षणिक प्रक्रिया द्वारा गाँव के निवासियों में अनुकूल वृत्ति तथा क्षमता का विकास करने का प्रयास कर रहा है। भूमिहीनों में भूमि का वितरण, भूमि के स्वामित्व का ग्रामीकरण, ग्रामकोष का इकट्ठा किया जाना, ग्रामसभा का संगठन, ये सब ग्रामस्वराज्य की दिशा में ही ले जाने वाले

कदम हैं। गाँव में स्वयं लोकशक्ति जाग्रत हो, इसके लिए कार्यकर्ताओं को बार-बार सजग किया जाता है कि गाँव वालों की निर्भरता उनपर न होनी चाहिए। इन क्रियात्मक कदमों में यह सावधानी रखने का पूरा प्रयास है कि हमारी प्रक्रिया साध्य के अनुरूप ही होनी चाहिए वर्तमान त्रिविध कार्य के अंगों में ग्रामदान के साथ दूसरे अंग शान्ति-सेना और ग्रामाभिमुख खादी हैं। ग्राम के लिए शान्ति-सेना पर, जिसपर ग्राम सैनिकों के नाम से गांधीजी ने भी बल दिया था, और आज ग्राम-शान्ति-सेना का संगठन भी हो रहा है। ग्रामाभिमुख खादी ग्राम के आर्थिक स्वावलम्बन का कार्यक्रम है। यह अवश्य है कि इस दिशा में कोई कार्य नहीं हो सका है। इस प्रकार यह त्रिविध कार्यक्रम ग्राम-स्वराज्य का ही कार्यक्रम है।

इससे यह स्पष्ट है कि वर्तमान सर्वोदय विचार और आन्दोलन दोनों की दिशा ग्रामस्वराज्य की ओर है। आन्दोलन में कितनी सफलता मिलेगी और कब, यह बहुत-सी बातों पर निर्भर है। देश की वर्तमान केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को देखते हुए यह लक्ष्य मरीचिका प्रतीत हो सकता है। किन्तु यह निर्णय सतही ही होगा। आज पश्चिमी जगत् में जो युवा-विद्रोह है क्या उसकी कल्पना कोई कर सकता था? क्या पश्चिम में जो आज गांधी-विचार के लिए आकर्षण है, उसकी कल्पना किसी को हो सकती थी? मुझे लगता है कि यह मानना कि ग्रामस्वराज्य की बात समयानुकूल नहीं है और पीछे ले जाने वाला कदम है, गलत होगा। इसी संदर्भ में कनाडा के राजनर्मज्ञ लेस्टर पियरसन का एक वाक्य याद आता है। उन्होंने एक स्थल पर कहा है, "सच्चा यथार्थवादी वह व्यक्ति है जो चीजों को दोनों प्रकार से देखता है, जैसे वे हैं और जैसी वे हो सकती हैं। प्रत्येक परिस्थिति में सुधार की संभावना, प्रत्येक जीवन में बेहतर होने की गुप्त क्षमता होती है। सच्चे यथार्थवाद में दुहरा दर्शन मिलता है— स्थूल दृष्टि और अन्तर्दृष्टि।" गांधीजी की अन्तर्दृष्टि बहुत-सी बातों

में सही प्रमाणित हो चुकी है, और वहुतों को विश्वास है कि गांधी और विनोवा की ग्रामस्वराज्य के संवंध में भी अन्तर्दृष्टि सही सिद्ध होगी। उसका वास्तविक रूप कैसा होगा, इसके सम्बन्ध में निर्णयात्मक रूप से अवश्य कुछ नहीं कहा जा सकता ।

१

गांधीजी की दृष्टि में ग्रामस्वराज्य

रचनात्मक कार्य

रचनात्मक कार्यक्रम का तात्पर्य ऐसे कार्यों से है जिनसे कुछ निर्माण हो, किसी चीज की रचना हो या व्यक्ति तथा समाज में किसी गुण का विकास हो। इस अर्थ से गांधीजी ने जो भी कार्य किया वह नयी समाज-रचना का अंग था। अहिंसक समाज-रचना के प्रयास में जिन-जिन कार्यक्रमों की आवश्यकता हुई, गांधीजी ने उन्हें हाथ में लिया और उन्हें पूरा करने का प्रयास किया। रचनात्मक कार्यक्रम की जब बात आती है तब १८ कार्यक्रमों का उल्लेख किया जाता है। लेकिन जैसा कि गांधीजी ने स्वयं कहा था यह कोई निश्चित संख्या नहीं है। यदि अहिंसक समाज-रचना के लिए अन्य कार्यक्रमों की जरूरत है तो वे जोड़े जा सकते हैं। बाद में ऐसा हुआ भी।

गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रमों की पूर्ति को ही पूर्ण स्वराज्य माना था और पूर्णस्वराज्य के लिए कई शब्दों का उपयोग किया था। पूर्ण-स्वराज्य, रामराज और ग्रामस्वराज्य इन शब्दों के पीछे अहिंसक समाज-रचना की कल्पना छिपी है। बाद में विनोबाजी ने ग्रामस्वराज्य के शब्द को अधिक व्यापकता प्रदान की। गांधीजी ने 'सर्वोदय' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन सभी शब्दों के पीछे एक नयी समाज-रचना की कल्पना है। इस कल्पना को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास गांधीजी ने किया और इस प्रयास से ही रचनात्मक कार्य और रचनात्मक संस्थाओं का गठन किया गया। इन सारे

कार्यक्रम को कालक्रम की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) गांधीजी के जीवनकाल में प्रारम्भ किये गये कार्यक्रम एवं उनकी पूर्ति के लिए बनी संस्थाएँ, (२) गांधीजी के बाद किये गये नये प्रयास।

स्वराज्य

पूर्ण स्वराज्य में ग्रामस्वराज्य की कल्पना छिपी है। किंतु यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए। भारत के संदर्भ में वे कोई दो चीजें नहीं हैं। भारत सदैव गाँवों में बसता रहा है और आज भी देश की ८२ प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। जब तक इन गाँवों में स्वराज्य अवतरित नहीं होगा तब तक स्वराज्य का सही फल नहीं देख सकते हैं। यही कारण है कि गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य को ग्रामस्वराज्य के रूप में देखा। अतः जब गाँव के हर व्यक्ति के पास पूर्ण स्वराज्य की किरण पहुँच जायेगी तभी गांधीजी की, पूर्ण स्वराज्य की कल्पना साकार होगी।

उन्होंने जिस प्रकार के स्वराज्य की कल्पना थी कि वह मात्र राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने तक सीमित नहीं था। गांधीजी की कल्पना में राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक तीनों तरह की आजादी ही सच्ची आजादी है और यह आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। गाँव-गाँव में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे गाँव में अपना राज्य कायम हो सके। गाँव के पास सत्ता और स्वयं की ताकत होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि हर गाँव अपने पाँव पर खड़ा होगा और अपनी जरूरतें स्वयं पूरी करने का प्रयास करेगा ताकि परनिर्भरता कम हो सके। वह अपनी शक्ति से ही घर एवं बाहर के संकट का मुकाबला करेगा। हर व्यक्ति अपने अधिकार और कर्तव्य को समझेगा तथा व्यक्तिगत स्तर पर उसे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की सुविधा मिलेगी। व्यक्ति समाज की बुनियाद है। जब तक व्यक्ति को विकास का पूरा अवसर प्राप्त नहीं होगा, तब तक समाज का समग्र विकास सम्भव नहीं होगा।

ऐसे समाज की रचना स्वभावतः सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। फिर ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। गांधीजी के शब्दों में—उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिंदगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिंदु होगा।

ग्रामस्वराज्य

गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य की जो कल्पना की थी वह उनके ग्रामस्वराज्य के विचार से स्पष्ट हो जाती है। उसके संबंध में उनका कहना था, "ग्रामस्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों पर भी निर्भर नहीं रहेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए —जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा—वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी फाजिल जमीन होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बड़ों व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बचे, तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर आर्थिक लाभ उठा सके, यों वह गांजा, तम्बाकू, अफीम वगैरा की खेती से बचेगा। हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभाभवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा। वाटर वर्क्स होंगे—जिनसे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजमी होगी। जहां तक हो सकेगा,

गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात-पांत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम-समाज में बिलकुल न रहेंगे। सत्याग्रह और असहयोग अस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बल होगी। गाँव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गांव के चौकी पहरे का काम करना होगा। गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा।"

रचनात्मक कार्य की पृष्ठभूमि

इस समाज-रचना की पूर्ति के लिए उन्होंने अठारह रचनात्मक कार्यक्रम बनाये थे। उनका मानना था कि यदि ये कार्यक्रम पूरे होते हैं तो हम पूर्ण स्वराज्य की मंजिलें सहज ही तय कर सकते हैं। उनके अनुसार "रचनात्मक कार्यक्रम को दूसरे शब्दों में और अधिक उचित रीति से सत्य और अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य की यानी पूरी-पूरी आजादी की रचना कहा जा सकता है।"

गांधीजी ने इस रचनात्मक कार्य का कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया। वास्तव में तो ये रचनात्मक कार्य उनके जीवन के प्रयोगों में से स्वत: विकसित हुए। उन्होंने जो भी कार्यक्रम हाथ में लिये उनपर से जो समस्याएं सामने आयीं तथा जिस प्रकार के कार्यक्रम हाथ में लेने की जरूरत उनको लगी, उसे कार्यक्रम के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया। जैसे, कौमी एकता की समस्या सबसे अधिक प्रखर थी। प्रारंभ से ही गांधीजी ने कौमी एकता की बात कही और यह उनके कार्यक्रम का मुख्य अंग था। परन्तु इस काम के लिए उन्होंने कोई

संस्था नहीं बनायी। इसी प्रकार मद्यनिषेध की बात भी प्रारंभ से करते आये और इसके लिए 'पिकेटिंग' आदि भी किये गये। स्त्रियों के कल्याण की बात भी काफी पहले ही उनके कार्यक्रम का अंग थी, परन्तु कस्तूरबा के निधन के बाद ही एक संस्था बनी जिसने इस काम को फैलाया। इस प्रकार हमें यह कहना चाहिए कि गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम की, कभी भी एक जगह बैठकर योजना नहीं बनायी। वह तो सहज में ही कार्यक्रम के साथ-साथ सामने आयी।

रचनात्मक कार्यक्रम का प्रारंभ जिस सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थिति में हुआ वह आज से सर्वथा भिन्न थी। उस समय हमारा देश अंग्रेजी शासन के अधीन था। अतः राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना उस समय के कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य था, यद्यपि गांधीजी ने कभी राजनीतिक स्वतंत्रता को एकमात्र लक्ष्य नहीं माना था। इसका कारण यह था कि पूर्ण स्वराज्य की कल्पना में राजनीतिक स्वराज्य एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है और बिना इसके प्राप्त किये, पूर्ण स्वराज्य की ओर कदम बढ़ाना संभव नहीं था। गांधीजी का मानना था कि यदि रचनात्मक कार्यक्रम को अपनाया गया तो पूर्ण स्वराज्य, जिसमें राजनीतिक स्वराज्य भी शामिल है, स्वतः आ जायेगा। राजनीतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति के संदर्भ में उनके रचनात्मक कार्यक्रम की—पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति की दृष्टि से—दो भूमिका थीं—(१) राजनीतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति की दृष्टि से स्वतंत्रता संग्राम के कार्यक्रमों में मदद करना ; (२) अहिंसक समाज की रचना करना। इसे पूर्ण स्वराज्य की प्रक्रिया कहना चाहिए।

गांधीजी ने उस समय की परिस्थिति को ध्यान में रखकर जो रचनात्मक कार्यक्रम सुझाये उनका अलग-अलग अपना स्थान होते हुए भी वे एक दूसरे से जुड़े हैं। वे कार्यक्रम ये हैं :—

१. कौमी एकता
२. अस्पृश्यता-निवारण

३. मद्य-निषेध
४. खादी
५. दूसरे ग्रामोद्योग
६. गाँवों की सफाई
७. नयी या बुनियादी तालीम
८. बड़ों की तालीम
९. स्त्रियाँ
१०. आरोग्य के नियमों की शिक्षा
११. प्रान्तीय भाषाएँ
१२. राष्ट्रभाषा
१३. आर्थिक समानता
१४. किसान
१५. मजदूर
१६. आदिवासी
१७. कोढ़ी
१८. विद्यार्थी

गांधीजी ने इन रचनात्मक कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने के लिए जो तरीका अपनाया था उसे दो रूप में समझ सकते हैं :—

(क) कुछ रचनात्मक कार्यक्रम ऐसे थे जिनको पूरा करने, तथा कार्यक्रम को व्यापक बनाने के लिए स्वतंत्र संस्थाओं का गठन किया गया। जैसे खादी-कार्य के विस्तार के लिए 'अखिल भारतीय चरखा संघ,' 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ', 'हरिजन-सेवक-संघ,' 'कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट' आदि की स्थापना की गयी। ये सभी स्वतंत्र संस्थाएँ स्वायत्त इकाई के रूप में अपने प्राथमिक लक्ष्य की ओर बढ़ती थीं। किंतु विचार एवं अन्तिम लक्ष्य की दृष्टि से वे एक दूसरी से मिली-जुली थीं। इन सभी संस्थाओं का सम्बन्ध

स्वाधीनता-संग्राम के साथ था, स्वतंत्रता-संग्राम की घटनाओं का सीधा प्रभाव इन संस्थाओं पर पड़ता था।

(ख) कुछ रचनात्मक कार्यक्रम ऐसे थे जिनकी पूर्ति के लिए किसी प्रकार की स्वायत्त संस्था की स्थापना नहीं की गयी। परन्तु इससे उनका महत्त्व कम नहीं होता था। वे सीधे कांग्रेस एवं गांधीजी द्वारा संचालित होते थे। जैसे कौमी एकता के लिए कोई स्वतंत्र संगठन नहीं था, परन्तु यह कांग्रेस का प्रमुख कार्यक्रम था। कांग्रेस के कार्यक्रमों के साथ उसका अभिन्न सम्बन्ध था। वास्तविकता तो यह थी कि सभी रचनात्मक कार्यक्रमों को कांग्रेस का समर्थन एवं सहयोग प्राप्त था। साथ ही स्वतंत्रता-संग्राम के साथ जुड़ा होने के कारण सभी कार्यक्रमों को जन-सहयोग प्राप्त था। ये सभी कार्यक्रम राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में स्वीकार्य थे।

२

रचनात्मक कार्यक्रम

गांधीजी ने जिन १८ रचनात्मक कार्यक्रमों की बात कही, उनके बारे में थोड़ा विस्तार से समझने की आवश्यकता है ताकि रचनात्मक कार्यक्रम का पूरा चित्र साफ हो सके। इस संख्या तथा कार्यक्रमों के निश्चय करने में उस समय की परिस्थिति का प्रभाव पड़ा था। आवश्यकता के अनुसार उनकी संख्या, स्वरूप एवं उनके संगठन में परिवर्तन भी किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए। स्वयं गांधीजी ने लिखा है, "इसमें शामिल किये गये विषय किसी खास सिलसिले से नहीं लिखे गये हैं। मेरी यह फेहरिस्त मुकम्मल होने का दावा नहीं करती, यह तो महज मिसाल के तौर पर पेश की गयी है।"

इस अध्याय में हम गांधीजी द्वारा बताये गये रचनात्मक कार्यक्रमों के बारे में विचार कर रहे हैं।

१. कौमी एकता

भारत विविध धर्मों वाला देश है, और यहां बसने वाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि जन्म, स्वभाव एवं संस्कार से भारतीय ही हैं। किन्तु इनमें अलगाव की वृत्ति रही है। इसका अंग्रेजी शासकों ने लाभ उठाया और इसको और भी प्रोत्साहन दिया। धारासभाओं में धर्म के नाम पर प्रतिनिधित्व दिया जाने लगा और अन्ततः परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ पाकिस्तान का भी निर्माण हुआ।

गांधीजी ने कभी भारत का कोई राष्ट्रीय धर्म नहीं माना। उनका कहना था कि सभी भारतीय, चाहे वे किसी भी धर्म को मानते हों, भारत के निवासी हैं। उन्हें भारत में एक परिवार की भाँति प्रेम से रहना चाहिए। कौमी एकता का कार्यक्रम ऐसा वातावरण बनाने के लिए हाथ में लिया गया था। इस कार्यक्रम को प्रस्तुत करते हुए गांधीजी ने कांग्रेसजन से कहा था कि वे हिन्दुस्तान के करोड़ों बाशिन्दों में से हर एक के साथ अपनेपन का—आत्मीयता का—अनुभव करें, यानी वे उनके सुख-दुःख में अपने को उनका भागीदार समझें। इस तरह की आत्मीयता को सिद्ध करने के लिए हर एक कांग्रेसी को चाहिए कि वह अपने धर्म से भिन्न धर्म का पालन करने वाले लोगों के साथ निजी दोस्ती कायम करे, और अपने धर्म के लिए उसके मन में जैसा प्रेम हो, ठीक वैसा ही प्रेम वह दूसरे धर्मों से भी करे।

वैसे भारत में विविध धर्मों के बीच समन्वय होता रहा है और विभिन्न धर्म के लोगों में बहुधा आपसी सद्भाव रहा है। किन्तु स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान, खासकर उसके अंतिम दौर में, हिन्दू और मुसलमानों के बीच तनाव बढ़ा था। इसको कम करने के लिए आवश्यक था कि विभिन्न धर्मों में एकता के लिए प्रयास किये जायें। अतः इस एकता को कायम करना उस समय कांग्रेस का मुख्य कार्यक्रम था। गांधीजी ने अन्तिम दिनों में तो अपनी पूरी शक्ति इसी काम में लगायी थी। नोआखली की ऐतिहासिक यात्रा से इस कार्यक्रम का महत्त्व साफ होता है। गांधीजी का मानना था कि जब तक सभी धर्म के लोग प्रेमपूर्वक रहना नहीं सीखेंगे तब तक सच्ची आजादी का सुख प्राप्त नहीं हो सकता है।

कौमी एकता की आवश्यकता आज भी उतनी ही है जितनी पहले थी। आज भी धर्म के नाम पर तनाव और संघर्ष होते रहते हैं। हमने धर्म-निरपेक्षता की नीति अवश्य स्वीकार की है और

संविधान के अनुसार किसी प्रकार का धार्मिक भेद नहीं है, फिर भी सामान्य जीवन एवं व्यवहार में आज भी धार्मिक स्तर पर प्रेम कायम नहीं हो सका है। कुछ लोग तो ऐसे भी हैं जो राजनैतिक स्तर पर धार्मिक भिन्नता का लाभ उठाने का प्रयास करते हैं। अतः कौमी एकता की स्थापना में देश के प्रत्येक नागरिक के सहयोग की अपेक्षा रखी जाती है। यह आवश्यक है कि हर व्यक्ति अपने से दूसरे धर्म से प्रेम करे और उसे उतना ही महत्त्व दे जितना अपने धर्म को देता है।

२. अस्पृश्यता-निवारण

समाज का एक वर्ग अस्पृश्य माना जाता है। सवर्ण कहा जाने वाला समुदाय इस वर्ग को अपने से नीच मानता रहा है। गांधीजी ने इस अस्पृश्य समुदाय को 'हरिजन' नाम दिया। उस समय स्थिति यह थी और आज भी है, जिसमें विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, कि किसी हरिजन को छूने मात्र से सवर्ण अपवित्र हो जाता था। उठना-बैठना, मंदिर, कुआँ, मकान, बोल-चाल आदि जीवन के हर स्तर पर हरिजन के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता था। ऐसा उन्हें हिन्दू मानते हुए भी था। हिन्दुओं की जातिगत संकीर्णता ने इस भेद को और अधिक बढ़ाया है। सामाजिक स्वाधीनता के लिए इस अस्पृश्यता का निवारण प्रथम शर्त है। जब तक हरिजनों एवं सवर्ण और अन्ततः विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक भेद समाप्त नहीं होता तब तक सामाजिक समानता की ओर बढ़ना संभव नहीं है। इसलिए यह व्यापक समाज-सुधार का कार्यक्रम है।

इस बारे में गांधीजी ने कहा था, "ऐसा कौन है जो आज इस बात से इंकार करेगा कि हमारे हरिजन भाई-बहनों को बाकी हिन्दू अपने से दूर रखते हैं, और इसकी वजह से हरिजनों को जिस भयावनी व राक्षसी अलहदगी का सामना करना पड़ता है, उसकी मिसाल तो

दुनिया में कहीं ढूंढ़े भी नहीं मिलेगी। यह काम कितना कठिन है, सो मैं अनुभव से जानता हूं। लेकिन स्वराज्य की इमारत को उठाने का जो काम हम ले बैठे हैं, उसी का यह एक हिस्सा है।"

इस कार्यक्रम के संदर्भ में गांधीजी ने अनेक कदम उठाये। हरिजनों के लिए मन्दिर खुलवाना, हरिजन आश्रम (अहमदाबाद) की स्थापना, 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना, हरिजन कल्याण के लिए धन एकत्रित करना इत्यादि। रोजमर्रा के जीवन में अस्पृश्यता की बुराई कैसे कम हो, इसका अभ्यास आश्रमों में किया जाता था। वहां हरिजन-सवर्ण का भेद नहीं था और सभी साथ रहते एवं खाते-पीते थे। गांधीजी ने उन कामों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की जिन्हें केवल हरिजनों द्वारा कराया जाता रहा है और जिसको करना धर्मभ्रष्ट होना मानते थे। टट्टी सफाई जैसे कार्य को आश्रम के सभी सदस्य, चाहे वे किसी भी जाति एवं धर्म के हों, करते थे। उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को व्यापक करने के लिए ही 'हरिजन सेवक संघ' नाम की संस्था का निर्माण किया था जो आज भी उस कार्य में लगी हुई है।

३. मद्य-निषेध

शराबबंदी का काम सामाजिक एवं नैतिक-सुधार के लिए आवश्यक है। यदि समाज का संतुलित विकास करना है तो शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों का सेवन बंद करना जरूरी है। १६२० में कांग्रेस ने शराबबंदी को अपने कार्यक्रम में शामिल किया। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान शराबबंदी कराना, उसके लिए 'पिकेटिंग' करना कांग्रेस का एक मुख्य कार्यक्रम होता था।

शराबबन्दी के काम को गांधीजी बहुत महत्त्व देते थे और उनका कहना यहां तक था कि यदि सत्ता मेरे हाथ में आये तो मैं एक दिन में शराब के ठेके समाप्त कर दूं। शराब का उपयोग बंद करने में दो प्रकार के कदम उठाये जा सकते हैं। एक तो जो लोग शराब पीते हैं उन्हें समझाना, शराब की बुराइयों को बताना तथा उससे

मुक्ति पाने के लिए उनको प्रोत्साहित करना और शराब की लत के शिकार लोगों को अन्य सुविधाएँ देना जिससे उनकी रुचि शराब से हट सके। इसका दूसरा पक्ष शराब के व्यापार से सम्बद्ध है। किसी भी स्वतंत्र देश में शराब का धन्धा नहीं चलना चाहिए और जनहित की दृष्टि से सरकार को शराब बन्द करने के कदम उठाने चाहिए। सरकार शराब से कोई आर्थिक लाभ उठाये यह तो बिलकुल ही गलत है। यही कारण है कि गांधीजी ने हमेशा कांग्रेस के साथ शराबबंदी के काम को जोड़ा। कांग्रेस स्वतंत्र भारत में शराब के प्रचलन को समाप्त करेगी, ऐसी अपेक्षा गांधीजी की थी। मद्य-निषेध में अफीम, गाँजा आदि नशीली वस्तुओं का निषेध भी लक्षित है।

४. खादी

खादी को रचनात्मक कार्यों का केन्द्र माना गया है। खादी के साथ एक विचारधारा जुड़ी हुई है। गांधीजी की दृष्टि में खादी का मतलब है, कि देश के सभी लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता और समानता का आरम्भ। खादी में स्वदेशी की भावना छिपी है। खादी-वृत्ति का अर्थ है, जीवन के लिए जरूरी चीजों की उत्पत्ति और उनके बंटवारे का विकेन्द्रीकरण, हर एक गाँव अपनी मुख्य जरूरत की चीजें पैदा करे और वह इस मात्रा में कि शहर के लोगों की जरूरतें भी पूरी हों। खादी के माध्यम से गांधीजी ने नयी विकेन्द्रित अर्थ रचना का चित्र प्रस्तुत किया है।

इस कार्य के विस्तार के लिए गांधीजी ने 'अखिल भारत चरखा संघ' की स्थापना की थी। पूरे देश में खादी का कार्य इसी संस्था के माध्यम से बहुत फैला। गांधीजी स्वयं चरखा संघ के अध्यक्ष थे। खादी लोकवस्त्र के रूप में फैले इसके लिए उन्होंने कहा—'जो काते वह पहने और जो पहने वह अवश्य काते।' फिर भी खादी एक उद्योग है और उसे उद्योग के रूप में ही विकसित किया गया। परन्तु इसका सम्बन्ध एक जीवन-पद्धति से है और इस कारण इसका

खास महत्त्व है। नेहरूजी ने खादी को हिन्दुस्तान की आजादी की वर्दी कहा था।

खादी के माध्यम से गांधीजी ने ग्रामस्वराज्य की विचारधारा प्रस्तुत की है। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान खादी का जो रूप था उससे स्पष्ट है कि खादी जनजागरण एवं सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति संदेशवाहक थी। इसके माध्यम से गांधी-विचार घर-घर पहुँचाने का प्रयास किया जाता था।

५. दूसरे ग्रामोद्योग

ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए आवश्यक है कि गांव स्वयं में पूर्ण घटक हो। यह तभी हो सकता है जब गांव अपने जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं का उत्पादन स्वयं करे। अर्थात् प्रमुख ग्रामोद्योग आटा-पिसाई, चावल-कुटाई, साबुन बनाना, दियासलाई बनाना, चमड़े का काम, तेल पेरना आदि गांव में चलाने होंगे। भारत गांवों में बसा है और भारत की समस्याओं को सुलझाने के लिए जरूरी है कि यहां की श्रमशक्ति को गांवों में ही काम दिया जाय। अतः यहां की नीति लोगों को उनके घरों में काम देने की होनी चाहिए। इसके लिए श्रम-प्रधान तकनीक का उपयोग करना होगा।

ग्रामोद्योग के विकास के लिए 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ' की स्थापना की गयी थी। यह संस्था गांवों के ग्रामोद्योगों के विकास का काम करती थी।

६. गांवों की सफाई

श्रम और बुद्धि के बीच जो अलगाव हो गया है कुछ उसके कारण और कुछ अशिक्षा के कारण हमारे देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गांव के बदले हमें घूर जैसे गांव देखने को मिलते हैं। गांव के बाहर और आस-पास इतनी बदबूदार गंदगी होती है कि अक्सर गांव में जाने वाले को आंख मूंदकर और नाक दबाकर

जाना पड़ता है। स्वच्छ जीवन व्यतीत करने के लिए जरूरी है कि व्यक्तिगत सफाई के साथ-साथ सार्वजनिक सफाई की परम्परा डाली जाय।

इस कार्यक्रम को गांधीजी द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अंग माना गया था। सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों ने इस काम को काफी महत्त्व दिया था। गाँधीजी स्वयं गांवों में जाकर सफाई करते और इस बात की प्रेरणा देते थे कि गांव के लोग सार्वजनिक सफाई में रुचि लें। ऐसे लोगों की संख्या काफी थी जो गाँव-गाँव घूमकर गांधीजी के उदाहरण का अनुकरण करते थे।

७. नयी तालीम

नयी तालीम के माध्यम से गांधीजी जीवन की शिक्षा जीवन के द्वारा देना चाहते थे। वे बच्चे का संतुलित विकास चाहते थे। इसके लिए बौद्धिक ज्ञान के साथ-साथ शारीरिक विकास का ध्यान रखा जाना जरूरी है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि शिक्षा उत्पादक हो जिससे उसको पूरी करने बाद छात्र किसी न किसी उद्योग में निपुण हो जाय। और अपनी जीविका चलाने में सक्षम हो जाय।

नयी तालीम के विस्तार के लिए हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना की गयी थी।

८. बड़ों की तालीम

प्रौढ़ शिक्षा का अपना महत्त्व है और उसको भी गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में स्थान दिया था। इस तालीम का तात्पर्य केवल साक्षरता से नहीं है। साक्षरता तो शिक्षा का केवल एक अंग है। अपने देश में रहने वाले को देश की भौगोलिक स्थिति, यहाँ की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति और समस्याओं का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। उनको यह भान होना चाहिए कि विशाल देश में

रहने वाले करोड़ों लोग इसी देश के हैं। प्रौढ़ शिक्षा उनको उनके उद्योग तथा व्यवसाय में भी अधिक सक्षम बना सकती है।

इस प्रकार के व्यापक काम को पूरा करने के लिए व्यापक शक्ति की जरूरत है। इसके लिए स्वतंत्र संस्था बनाने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। यह काम उस समय कांग्रेस के स्वयंसेवक एवं रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया जाता था।

९. स्त्रियाँ

गांधीजी ने इस काम के बारे में लिखा है "स्त्री-जाति की सेवा के काम को मैंने रचनात्मक कार्यक्रम में जगह दी है, क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों के साथ बराबरी के दरजे से और अधिकार से स्वराज्य की लड़ाई में शामिल करने के लिए जितना कुछ करना चाहिए, वह सब करने की बात अभी कांग्रेस वालों के दिल में बसी नहीं है।" व्यावहारिक जीवन में स्त्री पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त हों इसके लिए जरूरी है कि स्त्रियों में जो अज्ञान है उसे समाप्त किया जाय। भारत में सदियों से महिलाएं गुलाम की-सी जिन्दगी जीती रही हैं, वे दृष्टि से पिछड़ी एवं अज्ञान में रही हैं। जिस समय गांधीजी ने काम आरम्भ किया था उस समय तो स्त्री-शिक्षा नहीं के बराबर थी। सामाजिक दृष्टि से उनकी हालत यह थी कि वह घर की चार दीवारी से बाहर की बात जानती ही नहीं थी। इसके विपरीत स्थिति यह होनी चाहिए कि जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरुष को अपने भविष्य को बनाने का है, उतना और वैसा अधिकार स्त्री को भी हो।

इस काम के लिए कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट की स्थापना की गयी जो कि आज भी देशभर में स्त्रियों के सर्वांगीण विकास के काम में लगी है।

१०. आरोग्य के नियमों की संख्या

अपने शरीर की हिफ़ाजत करना और तन्दरुस्ती के नियमों को जानना एक अलग ही विषय है। भारत का सामान्य नागरिक आरोग्य के सामान्य नियमों का पूरा ज्ञान नहीं रखता है। आरोग्य का तात्पर्य यह नहीं कि हम दवाओं के बारे में जानकारी रखें। सच्चा आरोग्य तो मन और शरीर को शुद्ध रखने में है।

आरोग्य जीवन का अंग बने और शरीर एवं मन स्वस्थ रहें इसके लिए गांधीजी ने प्राकृतिक चिकित्सा की बात कही है। उसमें संयम और संतुलित जीवन को प्रधानता दी जाती है। इससे शरीर और मन दोनों शुद्ध होते हैं।

११. प्रान्तीय भाषाएं

प्रत्येक व्यक्ति का पूरा-पूरा मानसिक विकास हो और उसका व्यक्तित्व निखरे इनके लिए आवश्यक है कि उसको उसकी मातृभाषा द्वारा शिक्षा दी जाय। सच्चे लोकतंत्र में प्रदेश का राजकाज प्रादेशिक भाषा में ही चलना चाहिए। किसी विचार को मातृभाषा में कितनी आसानी से समझा जा सकता है उतनी आसानी से अन्य भाषा में नहीं समझा जा सकता। फिर मातृभाषा के साथ व्यक्ति का संस्कार एवं धरती का गुण जुड़ा होता है।

भारत में अनेक भाषाएं हैं और इन भाषाओं का उपयोग सामान्य जन करता है। इसलिए प्रत्येक प्रान्तीय भाषा को विकास के लिए पूरा अवसर एवं सुविधा मिलनी चाहिए।

१२. राष्ट्र भाषा

समूचे हिन्दुस्तान के साथ संपर्क रखने तथा केन्द्रीय राजकाज के लिए हमको एक ऐसी भारतीय भाषा की जरूरत है, जिसे ज्यादा से ज्यादा लोग जानते और समझते हों और जिसे लोग सहज में सीख सकें। गांधीजी की राय में सरल हिन्दी (हिन्दुस्तानी) ही ऐसी भाषा

है। वे इस भाषा के लिए नागरी और उर्दू दोनों लिपियों के चलन के पक्ष में थे।

गांधीजी ने इस राष्ट्रभाषा के प्रसार के लिए काफी काम किया। उनके ही प्रयास के कारण कांग्रेस के अधिवेशनों में हिन्दुस्तानी का प्रयोग होने लगा। उन्होंने हिन्दी में पत्र निकाले तथा दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रसार के लिए एक संस्था भी स्थापित की। कुछ समय तक वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रहे थे। उनकी प्रेरणा से 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा आदि की स्थापना हुई थी। उन्हें इसका भान था कि स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में संगठित होने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि राष्ट्रभाषा का पूरा विकास हो तथा उसे राष्ट्र में उचित स्थान मिले।

१३. आर्थिक समानता

आर्थिक समानता के लिए काम करने का अर्थ है पूंजी और मजदूरी (श्रम) के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर मुट्ठीभर लोगों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है, उनकी सम्पत्ति को कम करना और दूसरी ओर जो करोड़ों लोग आधा पेट खाते और नंगे रहते हैं, उनकी सम्पत्ति तथा आय में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेहिसाब अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज्य-व्यवस्था कायम नहीं हो सकती है।

आर्थिक समानता के विचार को मूर्तरूप देने के लिए गांधीजी ने ट्रस्टीशिप का विचार रखा था। ट्रस्टीशिप का आशय यह है कि व्यक्ति के पास जो भी सम्पत्ति है उसे वह समाज की समझे तथा उसका उपयोग समाज के कल्याण के लिए करे, व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं। व्यक्ति को व्यक्तिगत जीवन में उसका उतना उपयोग करने का

अधिकार है जितना उसके लिए परम आवश्यक है। गांधीजी ने देश के धनवानों से अपील की थी कि वे स्वेच्छा से ट्रस्टीशिप के विचार को स्वीकार करें और आर्थिक समानता लायें। उनका कहना था, "अगर धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलने वाली सत्ता को खुद राजीखुशी से छोड़कर और सबके कल्याण के लिए सबके साथ मिल कर बरतने को तैयार न होंगे तो यह तय समझिए कि हमारे देश में हिंसक और खूंखार क्रान्ति हुए बिना न रहेगी।"

१४. किसान

भारत गांव में बसता है और पूरी आबादी का करीब ८२ प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है। जब तक गांवों में बसने वाले करोड़ों का विकास नहीं होता तब तक देश का विकास संभव नहीं है। रचनात्मक कार्यक्रम में किसान को स्थान दिया गया है ताकि देश का सामान्य नागरिक ग्रामस्वराज्य की दिशा में कदम बढ़ाये।

गांधीजी का मानना था कि किसानों को उनकी अहिंसक शक्ति का भान कराने की आवश्यकता है। उनका जो शोषण और अत्याचार होता आया है वह समाप्त होना चाहिए। गांधीजी ने किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए कई सफल आन्दोलन चलाये थे। सबसे पहले आन्दोलन चम्पारन (बिहार) का था। उस अहिंसक सत्याग्रह का परिणाम यह हुआ था कि वहां के किसान निलहो (नील की खेती कराने वाले अंग्रेज) के अत्याचार से मुक्त हुए। इसके अतिरिक्त खेड़ा, बारडोली और बोरसद में भी किसानों का आन्दोलन चला था। करोड़ों किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए उनके बीच काम करने की आवश्यकता है ताकि वे अहिंसक मार्ग पर चलकर अपनी समस्याएं सुलझा सकें और देश के निर्माण में हाथ बटा सकें।

१५. मजदूर

कारखानों में काम करने वाले मजदूर अपनी समस्याओं को

सुलझाने के लिए ट्रेड यूनियन बनाते हैं। गांधीजी ने अहमदाबाद के मिल-मजदूरों का एक अहिंसक संगठन 'हिन्दुस्तानी मजदूर संघ' बनाया था। इसने उनकी समस्याओं को अहिंसक सत्याग्रह के माध्यम से सुलझाने का प्रयास किया था। इस प्रकार गांधीजी ने मजदूर संगठन को एक रचनात्मक दिशा दी थी। इस मजदूर संघ ने उनकी समस्याओं को सुलझाने के अतिरिक्त उनके कल्याण के लिए भी काफी काम किया है। मजदूर संगठन वास्तव में अहिंसक समाज की ओर बढ़े इस दिशा में हिन्दुस्तानी मजदूर संघ के प्रयास मजदूरों के बीच काम करने वालों के लिए मार्गदर्शक के रूप में हैं।

१६. आदिवासी

भारत की बहुत बड़ी आबादी आदिवासियों के नाम से जानी जाती है। आदिवासी कहे जानेवाले लोग सामान्यतया जंगलों में या जंगल के आस-पास रहते हैं। वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। आज भी उनके कई क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ शिक्षा एवं सामान्य जीवन के तौर-तरीके नहीं पहुँच सके हैं। सदियों से इनका शोषण होता आया है। इनकी सेवा करना और उनका सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास करना जरूरी है। गांधीजी ने आदिवासी सेवा को एक प्रमुख रचनात्मक कार्यक्रम माना था। इस कार्य में काफी लोगों ने सहयोग दिया। श्री ठक्करबापा पूरी जिन्दगी आदिवासी-सेवा में लगे रहे। आदिवासियों को, उनके आर्थिक एवं सामाजिक शोषण से मुक्ति के लिए उनमें जाकर निःस्वार्थ सेवा करने की जरूरत है। गांधीजी के काल से ही इस दिशा में कई संस्थाएँ काम कर रही हैं।

१७. कोढ़ी

कोढ़ी एक बदनाम शब्द है। इन कोढ़ियों की, जिनको सहानुभूति की बहुत जरूरत रहती है, हमारे यहाँ उपेक्षा की जाती रही है।

गांधीजी ने लिखा था, "अगर हिन्दुस्तान में सचमुच ही नवजीवन का संचार हुआ है, और हम सब सत्य और अहिंसा के मार्ग से कम-से-कम समय में पूर्ण स्वराज्य पाने के लिए अन्तर से आकुल हैं, तो हिन्दुस्तान में एक भी कोढ़ी या एक भी भिखारी ऐसा न होना चाहिए, जिसका नाम हमारे पास दर्ज न हो और जिसकी सार-संभाल हमने न की हो। एक कोढ़ी की सेवा गांधीजी ने स्वयं की थी। इस कार्य में ईसाई मिशनरी तो बहुत दिनों से संलग्न रहे हैं, किन्तु मनोहर दिवाण प्रथम हिन्दू थे जिन्होंने वर्धा के निकट कोढ़ियों की सेवा के लिए एक संस्था बनायी जिसको विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त रहा है।

१८. विद्यार्थी

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में विद्यार्थियों के योगदान का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में विद्यार्थियों का योगदान हमारे सामने है। हजारों विद्यार्थी पारम्परिक कालेज की शिक्षा का बहिष्कार कर आजादी की लड़ाई में भाग लेते रहे हैं। गांधीजी ने विद्यार्थियों का अहिंसक सत्याग्रह की लड़ाई में सहयोग प्राप्त करके एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया था।

विद्यार्थी के जीवन में ज्ञान की भूख के साथ-साथ समाज के हित के लिए कुछ करने की भावना भी होनी चाहिए। गांधीजी विद्यार्थियों से बहुत अपेक्षा रखते थे और उन्होंने उनके लिए कुछ नियम सुझाये थे। उनमें कुछ इस प्रकार हैं—१. विद्यार्थी को विद्या और ज्ञान की खोज करनी चाहिए, दलगत राजनीति से दूर रहना चाहिए। २. राजनीतिक हड़तालें नहीं करनी चाहिएँ। ३. शास्त्रीय तरीके से कताई करनी चाहिए। ४. खादी और ग्राम में बनी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। ५. साम्प्रदायिकता एवं अस्पृश्यता से दूर रहना चाहिए। ६. दुखी पड़ोसियों की सहायता तथा ग्रामीणों में शिक्षा

और सफाई का काम करना चाहिए। ७. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी नागरी तथा उर्दू दोनों लिपियों में सीखनी चाहिए। ८. जो सीखें वह गाँव में पहुँचायें। ९. कोई भी कार्य छिपा कर न करें। १०. साथ पढ़नेवाली बहनों के प्रति शुद्ध एवं सभ्यतापूर्ण व्यवहार रखें।

३

अखिल भारत चरखा संघ

स्थापना

स्वदेशी की भावना का प्रवेश राष्ट्रीय आन्दोलन में इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही हो गया, किन्तु खादी उसका अंग असहयोग आन्दोलन से ही बनी थी। प्रारम्भ से ही खादी का काम कांग्रेस के साथ जुड़ा रहा। प्रारम्भ में खादी का काम कांग्रेस स्वयं एक समिति के माध्यम से करती थी। परन्तु बाद में यह महसूस किया गया कि खादी पूर्ण रूप से आर्थिक कार्यक्रम है और इसे व्यवसाय के तौर-तरीके से चलाना ठीक रहेगा। गांधीजी को भी यह बात ठीक लगी। अतः उसको एक उद्योग के रूप में विकसित करने की दृष्टि से कांग्रेस ने इस काम के लिए एक स्वायत्त संस्था के निर्माण की बात सोची।

चरखा संघ की स्थापना के पूर्व दिसम्बर १९२३ में काकिनाडा कांग्रेस ने अखिल भारत खादी मंडल (ऑल इण्डिया खादी बोर्ड) की स्थापना की थी। इस बोर्ड के अध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज एवं मंत्री श्री शंकरलाल बैंकर थे। इस मण्डल को कांग्रेस महासमिति के मातहत देश भर में खादी-काम को संगठित करने तथा उसे चलाने के लिए कांग्रेस कार्यसमिति से प्राप्त रकम के अलावा चन्दा करने तथा खादी-काम करने के लिए कर्ज लेने का अधिकार था।

पटना में २२ सितम्बर, १९२५ को कांग्रेस-महासमिति ने इसके लिए प्रस्ताव पास किया और उसी समय चरखा संघ की स्थापना की गयी। प्रस्ताव में कहा गया, "निश्चय किया जाता है कि अब कांग्रेस देश के हित में आवश्यक हो, वह सारा राजनीतिक काम अपने हाथ

में ले और चलाये और अपने सारे तन्त्र तथा कोष का उपयोग इस उद्देश्य से करे। पर इसमें यह अपवाद है कि जो रकमें या जायदाद खादी-काम के लिए अंकित की गयी है तथा ऐसी रकमें और जायदाद कि जो अखिल भारत खादी मण्डल के अधीन है, वे मौजूदा आर्थिक जिम्मेदारियों के साथ महात्मा गांधीजी द्वारा बननेवाले अखिल भारत चरखा संघ को सौंप दी जायें। यह चरखा संघ कांग्रेस संगठन के अन्तर्गत, परन्तु स्वतन्त्र रहेगा और उसे ऊपर लिखी रकमों तथा जायदाद और अपने दूसरे कोषों का अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग करने का पूरा अधिकार रहेगा।"

इस प्रस्ताव के दूसरे दिन अखिल भारत चरखा संघ की स्थापना हुई। महात्मा गांधी चरखा संघ के अध्यक्ष बने एवं श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री शंकरलाल बैंकर मन्त्री। संघ का केन्द्रीय कार्यालय साबरमती में रखा गया।

उद्देश्य

चरखा संघ की स्थापना के समय मूल विधान में इसकी स्थापना के महत्त्व को इस रूप में स्वीकार किया गया था, "चूंकि हाथ कताई की कला का और खादी का विकास करने के लिए उस विषय का समग्र ज्ञान रखनेवाली एक संस्था स्थापित करने का समय आ गया है और अनुभव से यह साबित हो चुका है कि राजनीति से, राजनीतिक उथल-पुथल से और राजनीतिक संस्था के नियन्त्रण और प्रभाव से दूर रहनेवाली एक स्थायी संस्था के बिना उसका विकास हो सकना सम्भव नहीं है, इसलिए अब कांग्रेस-महासमिति की मंजूरी से कांग्रेस-संगठन के अन्तर्गत, किन्तु स्वतन्त्र अस्तित्व और सत्ता रखनेवाली 'अखिल भारत चरखा संघ' नाम की संस्था स्थापित की जाती है।"

इस प्रकार सितम्बर, १९२५ में अखिल भारत चरखा संघ की विधिवत् स्थापना हो गयी। इसके विधान एवं नियमावली में समय-समय पर संशोधन होते रहे। चरखा संघ देशभर में खादी का काम

करने लगा। १६४६ के अन्त में चरखा संघ ने अन्तिम रूप से जो विधान एवं नियमावली बनायी उसमें संघ का उद्देश्य नीचे लिखे कार्यक्रमों को पूरा करना बताया गया :—

हाथ-कताई तथा हाथकती हाथबुनी खादी की उत्पत्ति व बिक्री के तथा तत्सम्बन्धी अन्य सब प्रक्रियाओं के द्वारा—

(अ) गरीबों को पूरे या थोड़े समय काम देकर राहत पहुँचाना,

(आ) उनको यथासम्भव निर्वाह-मजदूरी प्राप्त करना,

(इ) उनकी बेकारीसे रक्षा करने के लिए साधन मुहैया करना, खास करके अकाल के दिनों में, फसल न होने पर या दैवी संकट आने पर,

(ई) सामान्यत: और यथावकाश शिक्षण, दवाई आदि की सुविधाएँ प्राप्त कराना,

(उ) हाथ कताई तथा खादी की उत्पत्ति व बिक्री तथा तत्सम्बन्धी दूसरी तमाम प्रक्रियाओं का शिक्षण देने तथा प्रयोग करने के लिए संस्थाएँ खोलना, चलाना या ऐसी संस्थाओं को सहायता देना और

(ऊ) पूर्वोक्त उद्देश्यों के अनुकूल दूसरे कार्य या प्रवृत्तियाँ चलाना।

संगठन

अखिल भारत खादी मंडल के समय से लेकर १६४० तक श्री शंकरलाल बैंकर मंत्री रहे और उसके बाद श्री श्रीकृष्णदास जाजू १६४७ तक मंत्री थे। महात्मा गांधी प्रारम्भ से ही चरखा संघ के अध्यक्ष रहे और उनकी मृत्यु के बाद १६४८ में श्री धीरेन्द्र मजूमदार अध्यक्ष बने। प्रथम कार्यकारिणी के बाद समय-समय पर कार्यसमिति एवं ट्रस्टी मंडल का पुनर्गठन होता रहा। १६४७ में श्री कृष्णदास

गांधी मंत्री चुने गये। आरम्भ से ही श्री पुरुषोत्तम कानजी कोषाध्यक्ष बने और १६४७ में श्री श्रीकृष्णदास जी जाजू ने इस पद को संभाला।

चरखा संघ में सामान्यतया दो प्रकार के सदस्य थे। एक सहयोगी सदस्य जो कि वार्षिक ६ गुण्डी हाथ कता सूत देते थे और दूसरे स्वावलम्बी सदस्य जो हर माह नियमित ७॥ गुण्डी सूत स्वावलम्बन के लिए कातते थे। १६४६ में, प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, सहयोगी सदस्यों की संख्या २५६८६ और स्वावलम्बी सदस्यों की संख्या ४८५३ थी।

चरखा संघ के संगठन में प्रान्तीय खादी का काम चलाने के लिए शुरू से ही प्रत्येक प्रान्त के लिए एक-एक प्रतिनिधि नियुक्त किये जाते रहे। प्रान्तीय प्रतिनिधि के सहयोग के लिए एक शाखा-मंत्री भी होते थे। ये दो पदाधिकारी प्रान्तीय कार्य के लिए जिम्मेदार होते थे।

कार्य की दिशा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है खादी के साथ एक विचारधारा जुड़ी है। स्वदेशी विचार के साथ-साथ विदेशी कपड़े के बहिष्कार की बात भी आयी। इस बहिष्कार ने एक ओर राजनीति को गति प्रदान की तो दूसरी ओर खादी के काम को फैलाया। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार से स्वभावतः खादी का प्रचार हुआ। करोड़ों बेकार, अर्धभूखे देहात के निवासियों को राहत प्रदान करना इसका एक प्रमुख लक्ष्य रहा है। वस्त्र-स्वावलम्बन के साथ-साथ गांव में ग्रामोद्योग तथा मूलभूत आवश्यकताओं की स्थानीय पूर्ति का भी यह प्रतीक रहा है। इसके द्वारा नैतिक अर्थशास्त्र को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया गया।

कार्य की दृष्टि से इतिहास को तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं। इनमें से हरएक काल में किसी एक-दो विशेष पहलुओं पर जोर रहा, साथ में दूसरी बातें भी थीं ही। सन् १६३३ तक खादी-काम का विशेष रूप से गरीबों को राहत देने को लेकर

व्यावसायिक रहा। बाद में सन् १९४३ तक जीवन-निर्वाह मजदूरी को लेकर उसमें नैतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि रही। सन् १९४४ के बाद उसको सत्य और अहिंसा का प्रतीक बनाने की दृष्टि प्रधान रही।

१९३३ तक खादी काम के मुख्य दो पहलू रहे : एक व्यापारिक खादी, दूसरा वस्त्र-स्वावलम्बन। व्यापारिक खादी का काम तेजी से बढ़ा। इसका लक्ष्य गरीब जनता को राहत देने का रहा। इस बीच काम का स्वरूप यह था कि मजदूरी को लेकर सूत कतवाना और तैयार माल बेचना। फुरसत के समय कताई करने का काफी प्रचार हुआ। अकाल के समय इस चरखे ने व्यापक पैमाने पर राहत पहुंचायी। प्रारम्भ से ही यह प्रयास रहा कि स्थानीय बिक्री को प्रोत्साहित किया जाय। सामान्यतया ७५ प्रतिशत माल प्रान्तों में ही बिक जाता था। इस बीच खादी में अच्छे कपड़े तैयार करने पर काफी जोर दिया गया।

इस समय कामगारों में भी वस्त्र-स्वावलम्बन का काम बढ़ाने की ओर ध्यान रहा है। जो लोग कताई एवं बुनाई में लगे थे। उनमें खादी का उपयोग बढ़े इसका प्रयास किया गया। उस पर आन्ध्र में करीब ७५ प्रतिशत कत्तिन-बुनकर खादी पहनते थे। दूसरे प्रान्तों में भी कामगार बड़ी संख्या में ऐसा करते थे।

स्वावलम्बी खादी

१९३४ में चरखा संघ की कार्य-पद्धति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और काम की दिशा ही बदल गयी। सामान्य कामकाज में तो खास फर्क नहीं आया, पर ऐसी प्रणाली शुरू हुई जिससे आगे चलकर, चरखा जो अब तक विशेषतः गरीबों को राहत के साधन के रूप में चलाया जाता था, ग्रामोत्थान के काम को दिशा प्रदान करने में मददगार हुआ। खादी ग्राम-अर्थव्यवस्था का प्रतीक बने तथा गांव को स्वावलम्बन के अभ्यास की ओर बढ़ाये इस दिशा में प्रयास किया जाने लगा।

चरखा संघ का लक्ष्य गरीब बेकार को काम देकर राहत देने के साथ-साथ यह भी था कि शहरवासियों का देश-प्रेम रचनात्मक काम में लगे। वे गांववालों की भलाई के बारे में अपनी जिम्मेवारी महसूस करें और इस दिशा में कार्य भी करें। परन्तु खादी का मुख्य लक्ष्य तो यह है कि लोग कपड़े के बारे में स्वावलम्बी बनें और अपने जीवन का विकास करें। गांधीजी ने संघ को इस ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। संघ का दृष्टिकोण बदला। अब इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि खादी बाजार के लिए बनाने की अपेक्षा खुद के इस्तेमाल के लिए बनायी जाय। इसका व्यावहारिक रूप यह रहा कि जो खादी बनाते हैं—कताई, बुनाई या इस काम में लगे अन्य लोग—वे इसका उपयोग पहले अपने लिए करें, बचा हुआ माल आस-पास रहनेवालों के पास जाय। यह आशा की गयी थी कि इसमें गांववालों के जीवन में परिवर्तन आयेगा और उनके आचरण और बुद्धि पर उसका असर होगा। खादी-कार्यकर्ताओं का भी यह कर्तव्य माना गया कि वे ग्रामीण जीवन में प्रवेश कर उनका मार्गदर्शन और मदद करें। इस दृष्टि से कार्यकर्ता-प्रशिक्षण का काम भी हाथ में लिया गया।

खादी में काम करनेवाले को जीवन-निर्वाह लायक मजदूरी मिलनी चाहिए, यह बात गांधीजी ने स्पष्ट तौर पर रख दी। यह स्वीकार किया गया कि खादी सस्ती करने के प्रयास में इसमें काम करनेवालों का शोषण नहीं किया जाना चाहिए। अतः पूरे समय काम करने पर इतनी मजदूरी तो मिलनी ही चाहिए जिससे जीविका चल सके। इस प्रकार १९३५ में सभी प्रान्तों में खादी-कामगारों की मजदूरी बढ़ायी गयी। उसका असर खादी की कीमत पर पड़ा और कीमत में प्रायः १५ प्रतिशत वृद्धि हुई। परन्तु कीमत बढ़ने से खादी की बिक्री नहीं घटी।

१९३७ में राजनीतिक परिस्थिति बदली। चुनाव के बाद कई प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने खादी-विकास में रुचि दिखायी और

खादी का प्रचार बढ़ा। बंबई, मद्रास, उत्कल और संयुक्त प्रान्तों की सरकारों ने खादी-काम में आर्थिक मदद भी दी।

इस काल में खादी की तकनीक में भी सुधार का काफी प्रयत्न किया गया। खादी-कार्य के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी और लाखों लोगों ने कताई-बुनाई का प्रशिक्षण लिया। १६४० के अन्त में राजनीतिक वातावरण बदला। इस वर्ष अक्टूबर माह से व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ। इस सत्याग्रह में वे ही शामिल हो सकते थे जो नियमित रूप से सूत कातते थे। इससे वस्त्र-स्वावलम्बन की प्रेरणा मिली।

बदलती परिस्थिति

सन् १६४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में चरखा संघ के मंत्री तथा अधिकांश प्रमुख कार्यकर्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। खादी-काम का संगठन एक प्रकार से टूट-सा गया। पूरे देश में खादी का काम बन्द सा हो गया। सरकार ने अनेक केन्द्रों को जब्त कर लिया। खादी-काम को काफी नुकसान हुआ। गांधीजी १६४४ के सितम्बर में जेल से छूटकर सेवाग्राम आये। इस समय तक खादी का काम बिखर चुका था। एक प्रकार से पुनः नये सिरे से सारा ढाँचा खड़ा करना था। अतः १६४४ से खादी-कार्य के नवसंस्करण का युग प्रारम्भ होता है।

१६४२ के आन्दोलन की गतिविधि देखकर गांधीजी ने मालूम किया था कि खादी-काम के लिए चरखा संघ का जो तंत्र है, उसे सरकार अपने दमन चक्र से नष्ट-भ्रष्ट कर सकती है, एवं खादी को मिटा सकती है। गांधीजी की राय बनी कि चरखा किसी संगठन द्वारा न चलाया जाकर लोग उसे अपने घरों में चलायें ताकि संगठन टूटने पर भी वह चलता रहे। चरखा वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए चले। इसके लिए चरखा संघ के काम का विकेन्द्रीकरण होना जरूरी माना गया। उनके मन में दूसरी महत्त्व की बात यह थी कि गांवों में रचनात्मक कामों के लिए जो चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ हिन्दुस्तानी तालीमी

संघ आदि संस्थाएँ बनी हैं, वे अपने दायरे का काम अलग-अलग कर रही हैं। लेकिन गाँव में काम का इस प्रकार का विभाजन नहीं चल सकता। वहाँ का जीवन समग्र है, इसलिए वहाँ जो कुछ भी सेवा करनी है, वह समग्र दृष्टि से होनी चाहिए।

उक्त बातों को ध्यान में रख कर सितम्बर १९४४ में चरखा संघ ने नीचे लिखा प्रस्ताव स्वीकृत किया :

चरखा संघ का नवसंस्करण

"चरखे की कल्पना की जड़ देहात है और चरखा संघ की पूर्ण कामनापूर्ति देहातों तक विभक्त होकर देहात की समग्र सेवा करने में है। इस ध्येय को ख्याल में रखते हुए चरखा संघ की यह सभा इस निर्णय पर पहुँचती है कि संघ की कार्यप्रणाली में निम्नलिखित परिवर्तन किये जाएँ :—

१. जितने सुयोग्य कार्यकर्ता तैयार हों और जिनको संघ पसंद करे, वे देहातों में जायँ।
२. बिक्री-भण्डार और उत्पत्ति-केन्द्र मर्यादित किये जायँ।
३. शिक्षालयों में आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन किये जायँ तथा नये शिक्षालय खोले जायँ।
४. उतने क्षेत्रवाले, जो एक जिले से अधिक न हो, यदि नयी योजना के अनुसार काम करने के लिए स्वतंत्र और स्वावलम्बी होना चाहें और यदि संघ स्वीकार करे तो उतने क्षेत्र में चरखा संघ अपनी ओर से काम न करे और जब तक चरखा संघ की नीति के अनुसार काम चले, संघ उसे मान्यता और नैतिक बल दे।
५ चरखा संघ, ग्राम-उद्योग संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, गो सेवा संघ, और हरिजन सेवक संघ इन संस्थाओं की एक सम्मिलित समिति बनायी जाय, जो समय-

समय पर इकट्ठा होकर नयी कार्यप्रणाली के अनुकूल आवश्यक सूचनाएँ निकाला करे।"

उक्त प्रस्ताव के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ। कुछ लोगों ने समग्र विकास की दृष्टि से प्रयोग प्रारम्भ किया। एक 'समग्र रचना समिति' बनायी गयी जिसमें विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि रखे गये। उस समिति के अध्यक्ष गांधीजी बने और मन्त्री श्री नरहरिभाई परीख। समिति में चरखा संघ की ओर से श्री श्रीकृष्णदास जाजू, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की ओर से श्रीमती आशादेवी, ग्रामोद्योग संघ से श्री जे० सी० कुमारप्पा हरिजन, सेवक संघ की ओर से श्री ठक्कर बापा और गो सेवा संघ की ओर से श्री यशवन्तराव पारनेरकर थे।

विकेन्द्रीकरण की नीति को असली रूप देने की दृष्टि से कई प्रयास किये गये। सबसे पहले बिहार खादी समिति और उसके बाद गांधी आश्रम मेरठ का विकेन्द्रीकरण हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे कई प्रान्तों में खादी-काम को विकेन्द्रित किया गया। गांधीजी का हमेशा प्रयास रहा कि खादी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का प्रतीक बने और वह वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से फैले।

इस बीच राजनीतिक परिस्थिति बदली। देश में राजनीतिक स्वतन्त्रता की खुशी की लहर सर्वत्र फैल गयी। परन्तु खादी के काम में सरकार के सहयोग की जो अपेक्षा थी वह सही सिद्ध नहीं हुई। सभी जगह कांग्रेसी सरकारें बनीं। परन्तु अब धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट होने लगी कि कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल का और कांग्रेस के मुख्य अधिकारियों में से कुछ का अब खादी में वह विश्वास नहीं रहा, जो पहले दीख पड़ता था। चरखे की प्रतिस्पर्धी मिल पर रोक लगाने की बात तो दूर रही, खादी सम्बन्धी अन्य छोटी-मोटी बातें करने में भी रुचि घटने लगी। वैसे समय-समय पर प्रस्ताव पास कर कांग्रेस-संगठन यह आदेश निकालता रहा कि खादी-काम में कांग्रेस कार्यकर्ता सहयोग

करें और वस्त्र-स्वावलम्बन को गति प्रदान करें। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय गांधीजी ने खादी के बारे में कहा था, "खादी का एक युग समाप्त हुआ है। खादी ने शायद गरीबों का एक काम कर लिया है। अब तो गरीब स्वावलम्बी कैसे बनें, खादी कैसे अहिंसा की मूर्ति बन सकती है, यह बताना है।"

३० जनवरी १९४८ को गांधीजी का निर्वाण हुआ। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रारम्भ से ही गांधीजी चरखा संघ के अध्यक्ष रहे थे और उनके मार्गदर्शन में ही देश में खादी का काम चलता था। राजनीतिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद बदलती परिस्थिति में रचनात्मक कार्यक्रम का क्या स्वरूप हो इसपर विचार करने के लिए रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन फरवरी १९४८ में करने का निश्चय हुआ था और गांधीजी इस सम्मेलन में मौजूद रहनेवाले थे। परन्तु गांधीजी के निर्वाण के कारण यह सम्मेलन १३ मार्च १९४८ को सेवाग्राम (वर्धा) में हुआ। इस सम्मेलन में काफी विचार विनिमय हुआ। रचनात्मक संस्थाओं को जोड़नेवाला एक संघ बनाना तय हुआ, ताकि अब तक जो रचनात्मक काम के एक-एक अंग का कार्य अपने-अपने दायरे में अलग-अलग होता था, वह एक दूसरे का पूरक और समग्र दृष्टि से हो और सब संघों का समन्वय हो सके। इस सम्मेलन में उस बात पर बल दिया गया कि सभी रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ता समग्र दृष्टि से काम करें और कार्यकर्ता अपने जीवन में समग्रता लायें।

ग्रामस्वराज्य की ओर

सभी संस्थाओं को एक सूत्र में जोड़ने की जो बात रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में तय हुई थी उसकी पूर्ति के लिए मार्च १९४९ में 'अखिल भारत सर्व सेवा संघ' की स्थापना हुई। किन्तु इसकी स्थापना के बावजूद यह प्रश्न बराबर बना रहा कि चरखा संघ सर्व सेवा संघ में विलीन हो या जुड़ी हुई, मगर स्वतन्त्र संस्था के

रूप में काम करता रहे। वैसे चरखा संघ खादी के काम को विकेन्द्रित करता जा रहा था। जिस-जिस क्षेत्र में खादी का काम विकेन्द्रित संस्थाओं ने सम्भाला वहाँ चरखा संघ मात्र नैतिक सलाह देनेवाली ऐजेन्सी के रूप में काम करता था। इस प्रकार चरखा संघ का खादी-कार्य धीरे-धीरे कम होता गया।

इसी दौरान देश में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ और देश में आर्थिक विकास का कार्यक्रम तेजी से चलने लगा। १९५१ में आचार्य विनोबा ने भू-दान आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन ने सर्वोदय समाज को ही नहीं, बल्कि पूरे देश को आकर्षित किया। सर्वोदय समाज में एक नयी चिंतनधारा निकली। विनोबाजी ने ग्राम-स्वराज्य की कल्पना को स्पष्ट किया। चरखा संघ ने विनोबाजी द्वारा संचालित आन्दोलन के संदर्भ में रचनात्मक कार्यक्रम के भविष्य पर विचार किया। संघ ने यह अनुभव किया कि ग्रामस्वराज्य की दिशा की ओर बढ़ने के लिए जरूरी है कि सभी रचनात्मक संस्थाएँ एक होकर प्रयास करें। ११ मार्च, १९५३ को चाण्डील (बिहार) में सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर चरखा संघ को सर्व सेवा संघ में विलीन करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव में कहा गया, "इस निर्णय से गांधीजी के चरखा संघ को दिये गये अन्तिम आदेश की पूर्ति हो रही है और दरिद्र नारायण की समग्र-सेवा करने के जिस महान उद्देश्य से गांधीजी ने चरखा संघ की स्थापना की थी, उसे सफल बनाने की दिशा में यह सही और समयानुकूल कदम है।" इस प्रकार १९२५ में स्थापित आ०भा० चरखा संघ ग्रामस्वराज्य के व्यापक उद्देश्य की पूर्ति के लिए १९५३ में सर्व सेवा संघ में विलीन हो गया।

४

हरिजन सेवक संघ

स्थापना और उद्देश्य

हरिजन-सेवक-संघ की स्थापना ३० सितम्बर, १९३२ को की गयी। पहले पहल इस का नाम 'अस्पृश्यता निवारण संघ (एण्टी अनटचेबिलिटि लीग) रखा गया था और बाद में फिर 'सर्वेन्ट्स आफ अनटेचेबल्स सोसाइटी' रखा गया। परन्तु अन्त में इसे हरिजन-सेवक-संघ कर दिया गया और इसी रूप में आज भी यह संस्था काम कर रही है। अस्पृश्य माने जानेवाले, हिन्दू-समाज के एक अंग को हिन्दुओं से अलग करनेवाले साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध गांधीजी ने पूना के यरवडा जेल में जो उपवास किया था, उसी के फलस्वरूप यह संस्था अस्तित्व में आयी थी। हरिजन-सेवक-संघ अहिंसक पद्धति से 'हरिजन' कहे जानेवालों को सभी अयोग्यताओं और कठिनाइयों से मुक्त करने का प्रयास करता है। उसका प्रयत्न उन्हें समान एवं सम्मानपूर्ण समाजायिक ऊर्जा प्रदान कराने का है। प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यह संगठन कांग्रेस का अंग नहीं होगा, वरन् उससे स्वतन्त्र एक अराजनीतिक संगठन होगा और इसकी प्रवृत्तियाँ अस्पृश्यता-निवारण और हरिजन-कल्याण तक ही सीमित रहेंगी।

३० सितम्बर, १९३२ को पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में बम्बई में एक सभा हुई। इस सभा में महात्मा गांधी के उपवास त्यागने तक की बदली परिस्थितियों पर विचार किया गया। इसी सभा में एक सर्वसम्मत प्रस्ताव पास किया गया। उसमें कहा

गया, "हिन्दुओं की यह सार्वजनिक सभा निश्चय करती है कि दिल्ली में प्रधान कार्यालय बनाकर एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण संघ स्थापित किया जाय, जिसकी शाखाएं विभिन्न प्रान्तों में अस्पृश्यता-निवारण का प्रचार करने के लिए प्रयत्न करे और इसके लिए निम्न कार्यक्रम तुरन्त हाथ में लिया जाय :

(क) सभी सार्वजनिक कुएँ, धर्मशालाएँ, सड़कें, पाठशालाएँ, श्मशानघाट आदि दलितवर्गों के लिए खुले घोषित कर दिये जाएँ।

(ख) सभी सार्वजनिक मन्दिर दलितवर्गों के लिए खोल दिये जायें, बशर्ते कि कालम (क) और (ख) को लागू करने में दबाव डालकर नहीं, बल्कि समझाने-बुझाने के द्वारा लोगों को राजी किया जाय।

(ग) संघ को शीघ्र संगठित करने और उसकी उद्देश्य-पूर्ति के लिए यह सभा श्री घनश्यामदास बिड़ला को अध्यक्ष तथा श्री अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर (ठक्कर बापा) को मन्त्री नियुक्त करती है।

इस निश्चय के अनुसार हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। उसके संविधान के अनुसार उसका उद्देश्य "हिन्दू-समाज में से सत्यमय और अहिंसक साधनों द्वारा छुआछूत को मिटाना और उससे पैदा हुई दूसरी बुराइयों तथा निर्योग्यताओं को जड़मूल से नष्ट करना है।" हरिजन सेवक संघ के कार्यों को मोटे तौर पर दो भागों में बांट सकते हैं : (१) सवर्ण हिन्दुओं की भावना में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना, जिससे वे स्वेच्छापूर्वक और स्वाभाविक रूप में हरिजनों को सभी नागरिक अधिकारों का उपयोग करने दें और (२) हरिजन कल्याण अर्थात् हरिजनों की शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना।

हरिजन सेवक संघ के कार्य के साथ महात्मा गांधी का नाम

स्वभावतः जुड़ जाता है। उन्हीं की प्रेरणा से एवं मार्गदर्शन में संघ का कार्य चलता था। वैसे, गांधीजी संघ के किसी पद पर नहीं थे। परन्तु व्यवहार में उन्होंने सदैव हरिजनों का काम किया। हरिजनकार्य के लिए धन इकट्ठा करना तो उनकी प्रत्येक यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। जिस काम को 'हरिजन' कहे जानेवालों के लिए समाज ने छोड़ा था उस काम को गांधीजी ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की। अपने अन्तिम वर्षों में तो गांधीजी ने हरिजनों के बीच ही रहना पसन्द किया। उन्होंने अपने साप्ताहिकों को 'हरिजन' तथा 'हरिजन सेवक' और 'हरिजन-बन्धु' नाम दिया।

कार्य की दिशा

हरिजन सेवक संघ ने स्थापना से लेकर अब तक जितने भी कार्य किये वे समाज से सामाजिक भेद-भाव कम करने की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। उसके काम का प्रथम चरण महात्मा गांधी की हरिजन-यात्रा के साथ प्रारम्भ होता है। अस्पृश्यता निवारण-कार्य को गति प्रदान करने के लिए गांधीजी ने १९३३-३४ में सारे भारत का भ्रमण किया। इस यात्रा का आयोजन श्री ठक्कर बापा ने किया था जिससे देश भर में हरिजन-कार्य के लिए वातावरण बना था।

उस समय स्थिति यह थी कि अस्पृश्यता के कारण आम स्कूलों में हरिजन बालक-बालिकाओं को एक तो प्रायः दाखिल नहीं किया जाता था और यदि दाखिल कर भी लिया जाता तो सबके साथ बराबरी से उनको बैठाया और पढ़ाया नहीं जाता था। संघ ने इस प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया। उसने हरिजनों के लिए सैकड़ों प्रारम्भिक एवं रात्रि-पाठशालाएँ चलायीं और छात्रावास खोले। औद्योगिक प्रशिक्षण देने के लिए कई स्थानों पर उद्योग शालाएँ स्थापित कीं। योग्य व साधनहीन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ स्वयं दीं और सरकार से दिलायीं।

१९३८ में संघ की प्रवृत्तियों का दूसरा चरण शुरू होता है।

१६३५ में सुधार ऐक्ट पास हुआ था, उसके अधीन प्रान्तीय स्वशासन का प्रारम्भ १६३७ में हुआ। चुनावों के परिणामस्वरूप प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल बने। अतः अस्पृश्यता-निवारण-कार्य अब केवल गैरसरकारी नहीं रह गया; प्रान्तीय सरकारें भी इसमें योग देने लगीं। अनुकूल वातावरण निर्माण होने पर संघ के लिए अपने कार्यक्रम पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया और विचार-विमर्श के बाद संघ इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सामाजिक अयोग्यताएँ सरकारी आदेशों से दूर नहीं हो सकतीं। उन्हें दूर करने के लिए तो संघ के कार्यकर्ताओं को सवर्ण हिन्दू और हरिजन दोनों के बीच व्यापक प्रचार करना होगा।

गांधीजी ने सितम्बर १६४४ से फरवरी १६४७ तक बंगाल, असम, मद्रास आदि प्रान्तों का दौरा किया और इससे हरिजन-कार्य को नयी प्रेरणा मिली। कितने ही प्रसिद्ध मन्दिरों और अन्य सार्वजनिक स्थानों का हरिजनों ने समानतापूर्वक उपयोग किया। सवर्ण हिन्दुओं ने इस काम में रुकावटें भी डालीं किन्तु उन्हें प्रयत्नपूर्वक अहिंसक तरीके से दूर किया गया। विभिन्न प्रान्तो में अस्पृश्यता निवारण के लिए कानून भी बने। इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व करीब १५ वर्ष तक हरिजन सेवक संघ ने स्वतन्त्र रूप से और कुछ समय सरकार के सहयोग से समाज में अस्पृश्यता-निवारण का काम किया। इससे समाज में एक वातावरण बना और छुआछूत की जड़ें कमजोर हुईं।

१५ अगस्त १६४८ को भारत विदेशी शासन से मुक्त हो गया। परन्तु विभाजन के कारण पूरे देश में विस्थापितों की बड़ी समस्या उपस्थित हो गयी। इनमें लाखों हरिजन थे। उनके पुनर्वास का काम हरिजन सेवक संघ ने लिया। यह काम १६५४ तक चला। इसके लिए केन्द्रीय सरकार ने 'हरिजन पुनर्वास बोर्ड' की स्थापना की थी जिसके अध्यक्ष श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और मन्त्री श्री ठक्कर बापा बनाये गये।

भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता का अन्त कर किसी भी रूप में उसका आचरण निषिद्ध और अस्पृश्यताजनित अपराध दण्डनीय घोषित कर दिया था। बाद में इसको कार्यान्वित करने के लिए अस्पृश्यता (अपराध) कानून भी संसद् ने पास किया। इस प्रकार अस्पृश्यता-निवारण के काम में सरकार ने पूरा सहयोग दिया है।

परन्तु भारत के संविधान द्वारा अस्पृश्यता का अन्त हो जाने और (अस्पृश्यता) अपराध कानून बन जाने के बावजूद व्यवहार में अस्पृश्यता से मुक्ति नहीं मिल सकी है। आज भी हरिजनों के साथ छुआछूत एवं अमानुषिक व्यवहार के समाचार पढ़ने में आते हैं। वास्तव में अस्पृश्यता-निवारण का काम समाज-सुधार का काम है जिसमें सफलता व्यापक प्रचार, लोकशिक्षण एवं उदाहरण द्वारा ही सम्भव है। हरिजनों की सामाजिक स्थिति सर्वसमान स्तर की हो इस प्रयास में हरिजन सेवक संघ द्वारा सभा, सम्मेलन शिविर, प्रचार-प्रकाशन का कार्य किया जाता रहा है। संघ के कार्यकर्ताओं ने विभिन्न प्रदेशों में पदयात्राएँ कीं और उनके भी उल्लेखनीय परिणाम आये हैं। पदयात्राओं के दौरान अस्पृश्यता-निवारण के प्रत्यक्ष कार्य भी किये जाते रहे हैं।

इसके अतिरिक्त हरिजन सेवक संघ द्वारा जो भी कार्य किये गये, उनमें मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश, सार्वजनिक कुओं पर हरिजनों का पानी भरना, सवर्ण एवं हरिजनों का साथ-साथ उठना-बैठना, होटलों में हरिजनों का प्रवेश, बाल बनाने आदि की सुविधा प्रदान कराना, मुख्य हैं। हरिजनों के लिए जो आर्थिक कार्य किये गये उनका अलग महत्त्व है।

भंगी के काम को समाज ने सबसे हीन काम माना है और उसको उन्हीं के लिए छोड़ दिया गया है। फिर भी भंगी-जाति को अस्पृश्य माना गया है और अस्पृश्यता की श्रेणी में भी भंगी को सबसे निम्न दर्जा प्राप्त है। हरिजन सेवक संघ ने भंगी को उस काम से

मुक्त करने का कार्यक्रम पिछले कुछ वर्षों से हाथ में लिया है। भंगी-काम में लगे लोग, यदि चाहते हैं तो उन्हें अन्य काम देने का प्रयास किया जाता है। पाखाना सफाई की पुरानी पद्धति को भी समाप्त करने का प्रयास किया जाता रहा है। इसके लिए भंगी-कष्ट-मुक्ति और भंगी-मुक्ति की योजनाएँ चल रही हैं।

हरिजन सेवक संघ समाज के जिस वर्ग को ऊँचा दर्जा प्रदान कराने का प्रयास करता रहा है वह परम्परा से उपेक्षित रहा है। गांधीजी ने अंत्योदय की बात कही थी। जब तक अंत्योदय नहीं होगा तब तक सच्चा स्वराज्य नहीं आ सकता है। भारत के गांवों में जातिगत संकीर्णता जिस स्तर की देखने को मिलती है उसमें साफ तौर पर ऐसा लगता है कि जब तक अस्पृश्यता से मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक ग्रामस्वराज्य की ओर बढ़ना सम्भव नहीं है, क्योंकि ग्राम-समाज का एक बड़ा भाग आज भी छुआछूत एवं सामाजिक भेदभाव का शिकार है। इस वर्ग को समान समाजार्थिक दर्जा प्राप्त हो, उस दिशा में ग्रामस्वराज्य आन्दोलन हमेशा प्रयत्नशील है। समाज-सुधार तथा समाज के किसी अंग के विकास की प्रथम शर्त यही है कि सदैव से उपेक्षित समुदाय को विकास का अवसर प्राप्त हो और यह समुदाय यह महसूस करे कि उसका भी समाज में वही स्थान है जो दूसरों का है। मनुष्य-मनुष्य के नाते सभी समान हैं और सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक हर स्तर पर सबको समान प्रतिष्ठा प्राप्त है, इस भावना को व्यवहार में लागू करने का काम हरिजन सेवक संघ कर रहा है। इस प्रकार इस संस्था के सहयोग से अहिंसक समाज-रचना की ओर बढ़ने में मदद मिल रही है।

५

अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ

गांवों में ग्रामोद्योगों का विकास हो तथा गांव के लोग को उनके घरों में ही काम मिले इसकी पूरी रूपरेखा गांधी अर्थशास्त्र के विद्वान् प्रो० जे० सी० कुमारप्पा के मन में थी। उन्होंने गांव की बिगड़ती आर्थिक स्थिति का व्यापक सर्वेक्षण किया था और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि ग्रामोद्योग के व्यापक विकास से ही गांव की समस्याएँ हल हो सकती हैं। महात्मा गांधी ने भी अपनी हरिजनयात्रा के दौरान गांवों की स्थिति को देखा था। ग्रामोद्योग धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं और गांव की दस्तकारी एवं कला का लोप होता जा रहा है। परिणाम यह है कि वहां की समाजार्थिक व्यवस्था ही नष्ट-भ्रष्ट होती चली जा रही है। अतः उनको भी ग्रामोद्योगों का जीर्णोद्धार आवश्यक लगा। इसके पीछे स्वदेशी की भावना भी थी और साथ ही इसका भी भान था कि इसकी नितांत आवश्यकता ग्रामस्वराज्य की दृष्टि से भी है।

१६३४ में कांग्रेस का अखिल भारतीय अधिवेशन बम्बई में हुआ। उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, "चूंकि जनता में स्वदेशी के वास्तविक स्वरूप के बारे में बहुत भ्रान्ति पैदा हो गयी है और चूंकि कांग्रेस का लक्ष्य आरम्भ से ही आम जनता के साथ उत्तरोत्तर एकरस होते जाना है और ग्राम-पुनर्गठन और पुनर्निर्माण का आशय आवश्यक रूप से मृत अथवा मृतप्राय ग्रामोद्योगों को पुनर्जीवित और प्रोत्साहित करने का है, जिसमें खादी सम्बन्धी मुख्य उद्योगों के

अतिरिक्त अन्य वहुत से उद्योग शामिल हैं, और चूंकि हाथ-कताई के पुनर्संगठन की भांति यह काम भी कांग्रेस की राजनैतिक प्रवृत्तियों से स्वतन्त्र और अप्रभावित रहकर केन्द्रीभूत विशेष प्रयत्नों से ही किया जा सकता है, इसलिए श्री जे० सी० कुमारप्पा को गांधीजी की सलाह और मार्गदर्शन में ग्रामोद्योग संघ नामक एक संस्था का निर्माण करने का अधिकार दिया जाता है।

"यह संघ उद्योगों के पुनर्जीवन और विकास के लिए तथा गांव के नैतिक और भौतिक उन्नति के लिए काम करेगा, तथा इसे अपना विधान वनाने, रुपया इकट्ठा करने और ऐसे सव कार्य करने का अधिकार होगा, जो इसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हों"।

इस प्रकार कांग्रेस के प्रस्ताव से अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ की विधिवत् स्थापना १४ दिसम्वर, १९३४ को की गयी। प्रारम्भ में श्री श्रीकृष्णदास जाजू ग्रामोद्योग संघ के अध्यक्ष और श्री जे० सी० कुमारप्पा मन्त्री थे। वाद में महात्मा गांधी अध्यक्ष और श्री जे० सी० कुमारप्पा मन्त्री वने। महात्मा गांधी जीवनपर्यन्त उसके अध्यक्ष थे।

इस संघ का उद्देश्य, जैसा उपर्युक्त प्रस्ताव से स्पष्ट है, ग्राम-संगठन तथा ग्राम-पुनर्रचना करना था जिसमें ग्रामोद्योगों को पुनर्जीवित करना तथा उनको प्रोत्साहित करना शामिल था। मुख्य समस्या गांव में फैले ग्रामोद्योगों को नये सिरे से विकसित करने की थी। ग्रामोद्योग संघ ने इस समस्या का व्यापक सर्वेक्षण किया और उसके विकास के अनेक प्रयास किये। उसका प्रधान कार्यालय मगनवाड़ी वर्धा में रहा। यहाँ कार्यालय के साथ-साथ विभिन्न ग्रामोद्योगों के वैज्ञानिक विकास के प्रयोग भी किये जाते थे और ग्रामोद्योगी वस्तुओं का वड़े पैमाने पर उत्पादन भी होता था।

नयी अर्थरचना की दिशा में

ग्रामोद्योग संघ मात्र व्यापारिक संस्था न होकर एक नयी अर्थ-व्यवस्था और अन्ततः नयी समाज-रचना के संदेशवाहक के रूप में कार्य

करती थी। फिर भी उसके कार्य को यदि संस्था के घेरे में समेटना चाहें तो उसकी पंचमुखी योजना मानी जा सकती है—(१) शोध-सर्वेक्षण, (२) उत्पादन, (३) प्रशिक्षण, (४) संगठन, (५) प्रचार और प्रकाशन। ये सभी कार्य व्यापक पैमाने पर चलाये जाते थे।

ग्रामोद्योग संघ का मानना था कि अहिंसक समाज-रचना में विकेन्द्रित उद्योगों का ही विकास होना चाहिए। इस प्रकार उसकी दृष्टि में भारत के औद्योगीकरण का तात्पर्य है ग्रामीण औद्योगीकरण। प्रो० जे० सी० कुमारप्पा ने इस विकेन्द्रित औद्योगीकरण में उद्योगों का वर्गीकरण तीन रूपों में किया है—(१) ग्रामोद्योग, (२) घरेलू उद्योग और (३) गृह उद्योग।

जिन उद्योगों में नीचे लिखे गुणों में से सब या अधिकतर गुण मौजूद हों उन्हें ग्रामोद्योग मानना चाहिए :—

१. जो गाँवों में आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन गाँववालों के लिए करते हैं;
२. उत्पादन-विधियाँ गाँववालों की पहुँच के भीतर हैं;
३. ऐसे औजार और यन्त्र काम में लाये जाते हैं, जो गाँव-वालों की आर्थिक पहुँच के भीतर हैं;
४. जिनमें स्थानीय कच्चे माल का उपयोग होता है;
५. जो मनुष्य एवं पशु-शक्ति से चलाया जाता है;
६. तैयार माल की बिक्री स्थानीय या पास-पड़ोस में हो; और
७. जिससे बेकारी न फैलती हो।

इस प्रकार के उद्योगों में भोज्य पदार्थों की तैयारी, जैसे—आटा पीसना, तेल पेरना, गुड़ बनाना आदि के अतिरिक्त मधुमक्खी पालन, रेशम के कीड़े पालना, चमड़ा का काम, कागज बनाना, रस्सी बटना, कुम्हार का काम, बढ़ई का काम, साबुन बनाना, रंगाई-छपाई, कलात्मक काम आदि आते हैं।

घरेलू उद्योग उसे माना गया जिसे परिवार के सदस्य मिलकर अपने फालतू समय में करते हैं, जैसे—कताई, फल-संरक्षण, कसीदा काढ़ना आदि।

गृह-उद्योग वे हैं जिनमें कारीगरों को अपने घरों में पूरे दिन काम मिलता है, जैसे—सुनार का काम, मोची का काम, दर्जी का काम आदि।

ग्रामोद्योग संघ ने इन सभी उद्योगों को विकसित करने का प्रयास किया। संघ ने जिन उद्योगों के विकास एवं प्रसार का काम हाथ में लिया उनमें से अधिकांश कभी-न-कभी भारत के गाँवों में चलते थे। ये उद्योग आज मृत अवस्था में चलते देखे जा सकते हैं। मगन-वाड़ी में इन सभी उद्योगों पर व्यापक शोध की व्यवस्था थी ताकि उसे वैज्ञानिक रूप दिया जा सके।

१९३७ में प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमंडल का गठन विभिन्न प्रान्तों में हुआ। इन सरकारों ने ग्रामोद्योगों के विकास पर विचार किया और ग्रामोद्योग संघ के कार्य को गति मिली। परन्तु, जैसा पहले लिखा जा चुका है, दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ जाने के बाद कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। फिर भी ग्रामोद्योग संघ अपने सीमित आर्थिक साधनों से इन उद्योगों का विकास करने का पूरा प्रयास करता रहा।

पुनः १९४६ में कांग्रेसी सरकार बनने के बाद ग्रामोद्योग संघ के तत्त्वावधान में मन्त्री स्तर पर एक सम्मेलन पूना में हुआ। ग्राम-आन्दोलन की दृष्टि से आयोजन का क्या स्वरूप हो और किस प्रकार से सारे देश में ग्रामोद्योगों तथा ग्रामनिर्माण के लिए एक समन्वित तथा संगठित प्रयत्न किया जाय, इस दृष्टि से संघ ने ग्राम-विकास की एक योजना सम्मेलन में प्रस्तुत की। इसके बाद विभिन्न प्रान्तों की कांग्रेस सरकारों ने ग्रामोद्योगों के विकास में उत्साह दिखाया। बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा आदि प्रान्तों में इसके लिए योजना भी बनी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ग्रामोद्योगों के विकास पर बल दिया

गया, लेकिन विकेन्द्रित औद्योगीकरण को आर्थिक विकास का आधार नहीं बनाया गया है। जहाँ तक ग्रामोद्योग संघ का प्रश्न है उसने हमेशा ही नयी समाज-रचना को अपना लक्ष्य माना था। ग्रामोद्योग संघ के प्राण कुमारप्पा जी को ग्रामोद्योगों पर केवल कुछ रकम मात्र खर्च करने से संतोष नहीं था। उन्होंने तो हमेशा समग्र विकास पर ही जोर दिया था।

सर्व सेवा संघ में विलय

मार्च १९४८ में वर्धा में होनेवाले रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सम्मेलन के बाद सभी रचनात्मक संस्थाओं के समन्वय एवं एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इस समय श्री प्रो० जे० सी० कुमारप्पा ग्रामोद्योग सघ के अध्यक्ष थे और श्री जी० रामचन्द्रन् मन्त्री। बाद में १९५२ में श्री एस० वी० मंदागिरे मन्त्री बने थे। इसी बीच अखिल भारत सर्व सेवा संघ का निर्माण हो गया था और ऐसा महसूस किया जाने लगा कि रचनात्मक संस्थाओं को सर्व सेवा संघ में विलीन कर दिया जाय। १९५३ में जब अनेक संस्थाएँ सर्व सेवा संघ में विलीन हो गयीं तो उनमें ग्रामोद्योग संघ भी था। इस प्रकार उसका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया। उसकी अन्य अधिकांश प्रवृत्तियाँ सरकार द्वारा स्थापित खादी ग्रामोद्योग कमीशन द्वारा चलायी जाने लगीं।

६

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ

नयी तालीम का विचार

नयी तालीम का विचार गांधीजी ने सबसे पहले जुलाई १९३७ के 'हरिजन' में रखा। उन्होंने लिखा था, "सच्ची शिक्षा वही है जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर मन और आत्मा के उत्तम गुणों का सर्वाङ्गीण विकास कर सके और उन्हें प्रकाश में ला सके। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्तिम ध्येय है और न उससे शिक्षा का आरम्भ ही होता है। वह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित बनाने के अनेक साधनों में एक साधन है इसलिए मैं तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात् जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है उसी क्षण से उसे कुछ-न-कुछ नया सृजन करना सिखा कर ही करूँगा। इस तरीके से हर एक पाठशाला स्वावलम्बी बन सकती है। शर्त सिर्फ यह है कि इन पाठशालाओं में तैयार होनेवाले माल को सरकार खरीद लिया करे। मैं मानता हूँ कि इस पद्धति द्वारा मन और आत्मा का ऊंचा से ऊँचा विकास हो सकता है।"

सितम्बर १९३७ के हरिजन के एक अंक में नयी तालीम के विचार को स्पष्ट करते हुए गांधीजी ने फिर लिखा—"मैं पूरे तौर पर यकीन करता हूँ कि हिन्दुस्तान के लिए प्राथमिक शिक्षा मुफ्त और लाजिमी होनी चाहिए। साथ ही मैं यह भी यकीन रखता हूँ कि यह बात तभी हो सकती है जब कि बच्चों को कोई मुफीद धन्धा सिखाया जाय और इस तरह की सिखाई में बच्चों की दिमागी, शारीरिक

और आत्मिक शक्तियों से काम लिया जाय और उनको बढ़ाने का मौका दिया जाय।"

तालीमी संघ की स्थापना

गांधीजी द्वारा प्रस्तुत शिक्षा की इस नयी योजना पर विचार करने के लिए अक्टूबर १९३७ में राष्ट्रीय शिक्षा की पहली कान्फ्रेन्स वर्धा में बुलायी गयी। गांधीजी इसके सभापति थे। इस कान्फ्रेन्स ने डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक कमेटी बनायी जिसने इस तालीम का एक विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार किया। मार्च १९३८ में इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट गांधीजी को दे दी। इसी माह हरिपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मार्च १९३८ में हुए हरिपुरा कांग्रेस ने इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया। प्रस्ताव इस प्रकार है :—

१. देश के तमाम लड़के-लड़कियों को सात साल तक मुफ्त और लाजिमी तालीम मिलनी चाहिए।
२. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।
३. यह सात साल की तमाम तालीम किसी उत्पादक, हाथ की दस्तकारी के मार्फत दी जाय और जहां तक संभव हो दूसरी तमाम हलचलें और काम भी इसी केन्द्रीय धन्धे के इर्द-गिर्द चलें। यह धन्धा बच्चे की परिस्थिति को पूरी तरह ध्यान में रख कर ही चुना जाना चाहिए।

इसलिए कांग्रेस की राय है कि शिक्षा के इस बुनियादी अंग का काम चलाने के लिए एक अखिल भारत शिक्षा मंडल (हिन्दुस्तानी तालीमी संघ) स्थापित किया जाय। वह डॉ० जाकिर हुसेन और श्री आर्यनायकम् से प्रार्थना करती है और उन्हें अधिकार देती है कि वे बुनियादी तालीम का ठोस कार्यक्रम तैयार करने के लिए, महात्मा गांधी की सलाह से और उनकी देखरेख में एक संघ खड़ा करें और

सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षा के संचालकों से इस कार्यक्रम को स्वीकार करने की सिफारिश करें।

अप्रैल १६३८ में यह वोर्ड हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के नाम से वना। इसका प्रधान कार्यालय सेवाग्राम वर्धा में रखा गया। इसके अध्यक्ष डा० जाकिर हुसेन और मन्त्री श्री आर्यनायकम् हुए। श्री आर्यनायकम्जी प्रारम्भ से अन्त तक इसके मन्त्री रहे। नयी तालीम को आगे वढ़ाने में श्री आर्यनायकम्जी का प्रमुख हाथ था।

नयी तालीम का प्रसार

इसी माह वुनियादी तालीम (प्रथमिक स्तर की नयी तालीम) की पहली संस्था 'विद्या मंदिर ट्रेनिंग स्कूल' वर्धा में खोली गयी। वाद में मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, (अव उत्तर प्रदेश), विहार आदि प्रान्तों में वुनियादी तालीम का काम प्रारम्भ हुआ। १६३६ में विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने वुनियादी शिक्षा के विकास के लिए पटना (विहार) इलाहावाद (संयुक्त प्रान्त), रामचन्द्रपुर (उड़ीसा) लोणी (महाराष्ट्र), कतारगाम (गुजरात), धारवाड़ (कर्नाटक), जलगांव (खानदेश), वर्धा (मध्यप्रान्त), और कोयम्वटूर (मद्रास) में प्रशिक्षण-केन्द्र खोले। कुछ राष्ट्रीय संस्थाओं ने भी स्वतंत्र रूप से प्रशिक्षण प्रारम्भ किया। उनमें 'जामिया मिलिया इस्लामिया' (दिल्ली) 'आन्ध्रजातीय कलाशाला' (मछलीपट्टम) और वेड़छी आश्रम (गुजरात) थे।

१६३८-१६३६ में कार्य प्रारम्भिक रहा। प्रान्तीय कांग्रेस मंत्रिमंडलों के पदत्याग के वाद भी १६४०-४१ में वुनियादी तालीम का काम थोड़ी वहुत कठिनाइयों के साथ चलता रहा। किन्तु १६४२ का आन्दोलन प्रारम्भ होने पर प्रायः वंद हो गया। और यह स्थिति मार्च १६४४ तक वनी रही। इस वीच इस क्षेत्र में काम करने वाले लोग स्वतन्त्रता-आन्दोलन में लगे रहे। तालीमी संघ के २१ सदस्यों में से १५ सदस्य जेलों में थे। फिर भी कुछ विद्यालय ऐसे थे जहां काम चलता रहा। दिल्ली, पूना, वर्धा की संस्थाओं का काम पूर्ववत् चलता

रहा। बिहार में भी आंशिक रूप से बुनियादी तालीम विद्यालय चलते रहे।

जनवरी १९४५ में सेवाग्राम में एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में नयी तालीम पर नये सिरे से विचार किया गया। गांधीजी ने नयी तालीम की व्यापक व्याख्या की और कहा कि अब हमारा कार्यक्षेत्र सात से चौदह साल के बालकों तक सीमित नहीं है। नयी तालीम तो जीवन के समग्र विकास की शिक्षा देती है। माँ के पेट में जन्म लेने से लेकर मृत्यु तक तालीम की प्रक्रिया चलती रहती है। भारत गाँवों में बसा है जहाँ बेहद गरीबी है। इस गरीबी की स्थिति में नयी तालीम ही चल सकती है। इस तालीम से लाखों गाँवों में बसनेवाले करोड़ों लोगों को जीवन की शिक्षा मिलेगी। वे बौद्धिक ज्ञान के साथ-साथ शारीरिक ज्ञान भी प्राप्त करेंगे। शिक्षा के साथ जीविका का आधार भी उन्हें प्राप्त होगा। अब तालीमी संघ का उद्देश्य "शारीरिक श्रम और हस्त उद्योग द्वारा दी जानेवाली जीवन भर की शिक्षा का काम करना" माना गया। इस प्रकार नयी तालीम के व्यापक प्रचार के लिए एक नया मार्ग खुला। तालीम के क्षेत्र में यह गांधीजी की नयी देन थी जिसे तालीमी संघ के माध्यम से वे प्रसारित करना चाहते थे। उसे समग्र नयी तालीम कहा गया।

बिहार में नयी तालीम को व्यापक रूप देने का विशेष प्रयास किया गया था। १९४७ में बिहार में बुनियादी विद्यालयों की सख्या ३८, बुनियादी ट्रेनिंग स्कूलों की संख्या ३ थी और पटना में एक उत्तर बुनियादी स्कूल था। इस प्रकार का एक और स्कूल सेवाग्राम (वर्धा) में भी था। इस उत्तर बुनियादी तालीम का लक्ष्य निम्नलिखित माना गया :—

१. इस तालीम को पूरा करने के बाद ज्यादातर विद्यार्थी किसी धन्धे या पेशे में प्रवेश करके अपना जीवन निर्वाह कर सकें और उनमें जो विद्यार्थी ज्यादा बुद्धिमान हों वे आगे की तालीम ले सकें।

२. इन स्कूलों में खेती, कपड़ा बनाना, टेकनालॉजी और गृह-उद्योग इन पेशों के जरिये शिक्षा देने का प्रबन्ध हो।
३. विद्यार्थी भिन्न-भिन्न धन्धों और पेशों में जो तालीम लेंगे, उसमें जो कमाई होगी उसके जरिये स्कूल को स्वावलम्बी बनाने की कोशिश की जायगी।
४. इन स्कूलों के शिक्षक और विद्यार्थियों को लेकर एक सहकारी, स्वावलम्बी समाज बनाने की कोशिश की जाय, जिसमें वे अपने लिए जरूरी खुराक और कपड़ा उत्पन्न करने के साथ-साथ इन उद्योगों की तालीमी संभावनाओं का पूरा-पूरा उपयोग करके उसके जरिये अपने व्यक्तित्व के सब पहलुओं का पूरा-पूरा विकास करने की कोशिश करें।

इसका प्रयास किया गया कि प्रान्तीय सरकारें नयी तालीम को बुनियादी और उत्तर बुनियादी दोनों स्तर पर स्वीकार करें। इन सरकारों ने बुनियादी स्तर पर यह शिक्षा किसी मात्रा में स्वीकार की। परंपरागत पद्धति के साथ-साथ बुनियादी विद्यालय भी खोले गये। ऐसा ग्रामों में किया गया। किन्तु उत्तर बुनियादी का एक प्रयोग केवल बिहार सरकार ने कुछ दिनों किया था।

सर्व सेवा संघ में विलय

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ १९४८ में सर्व सेवा संघ के साथ जुड़ गया था। इस प्रकार सर्व सेवा संघ के संस्थापक सदस्यों में था। भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के व्यापक रूप में फैलने के बाद जब समग्र नयी तालीम की बात आयी तो तालीमी संघ ने महसूस किया कि भूदान-ग्रामदान के माध्यम से ही समग्र नयी तालीम का प्रसार अधिक उपयोगी होगा। फलस्वरूप हिन्दुस्तानी तालीमी संघ सर्व सेवा संघ में १९५९ में विलीन हो गया; किन्तु १९६५ में इस बात की आवश्यकता लगी कि ग्रामदान क्षेत्रों में निर्माण कार्य पर ध्यान आकर्षित करने के लिए फिर से उसकी स्थापना एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में की जाय। अतः नयी तालीम समिति के नाम से ऐसा किया गया।

७

कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों में, जैसा कि हम देख चुके हैं, एक कार्यक्रम स्त्री-सुधार का था। उनके आंदोलनों, संस्थाओं और आश्रमों में स्त्रियों का दर्जा पुरुषों के समान ही था। किंतु महिलाओं के काम के लिए उन्होंने किसी अलग संस्था की स्थापना नहीं की थी। फरवरी १९४४ में कस्तूरबा गांधी की मृत्यु के बाद देश के १०४ गण्य-मान्य सदस्यों ने ८ मार्च १९४४ को राष्ट्र के नाम एक अपील निकाली जिसमें उनके स्मारक फंड के लिए ७५ लाख की धनराशि एकत्रित करने की बात थी। इसके बाद गांधीजी आगा खाँ महल से छूट गये और २ अक्टूबर, १९४४ को उनके जन्मदिन के शुभ अवसर पर उनको ८० लाख की थैली भेंट की गयी। कुछ ही सप्ताह बाद यह रकम १ करोड़ ३२ लाख हो गयी थी और फिर १ अप्रैल १९४५ को गांधीजी ने विधिवत् 'कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट' की रचना की।

इसके प्रथम अध्यक्ष गांधीजी ही बनाये गये थे। गांधीजी ने उस समय कहा था, "बा तो एक सीधी-सादी देहाती मानसवाली स्त्री थी; उसने वैसा ही जीवन जीया और अपनी सेवा देहातों को दी। उसकी याद में बने ट्रस्ट का उद्देश्य 'देहाती स्त्री और बच्चों की सेवा करना' ही हो सकता है"। गांधीजी का यह आग्रह था कि 'छोटे देहातों में काम किया जाये और स्त्रियां स्वयं इस कार्य की जिम्मेदारी उठायें'। इसी दृष्टि से १९४६ में गांधीजी ने उन सब

प्रांतीय समितियों का विसर्जन कर दिया जो निधि एकत्र करने के लिए बनी थी और प्रत्येक प्रांत में काम की संपूर्ण जिम्मेदारी उठाने वाली प्रतिनिधि बहनों की खोज की। यह एक कठिन काम था, और इससे भी कठिन काम उपयुक्त सेविकाओं को ढूंढ निकालना और गांवों में उनको बैठाना था। गांधीजी भारत की एक साधारण से साधारण स्त्री को भी इतना पूर्ण और आत्मनिर्भर देखना चाहते थे कि वह अपने बीच फैली जड़ता, निराशा, कुप्रथा, कंगाली और अज्ञान से लोहा ले सके। प्रतिनिधि बहनों की खोज कर ली गयी। सेविकाओं के प्रशिक्षण की ओर ट्रस्ट का ध्यान पहले ही गया था और इस दिशा में प्रथम प्रयास १९४५ में हुआ था।

कार्य की प्रगति

इस वर्ष की अप्रैल-मई में बोरिवली (बंबई) में बहनों का पहला प्रशिक्षण-शिविर चलाया गया जिसमें देश भर से ८० बहनों ने भाग लिया। आगे के कार्य के बारे में यह निश्चय किया गया कि भले ही ट्रस्ट को धीमे चलना पड़े, गाँवों में कस्तूरबा सेविकाओं से शिक्षा, स्वास्थ्य और उद्योग विषयों में जिस प्रकार के सेवाकार्य की अपेक्षा है उसकी पूर्व-तैयारी के लिए सेविका को कम-से-कम एक साल की तालीम मिलनी ही चाहिए। प्रशिक्षण के अंतर्गत प्रसूति-सेवाओं का प्रशिक्षण, बालमंदिर, ग्रामसेवा, बुनियादी तालीम का प्रशिक्षण दिया जाता है। ट्रस्ट ने अपना पहला ग्रामसेविका-विद्यालय मधुबनी (बिहार) में चलाया। उसके बाद प्रान्तीय स्तर पर कई ग्रामसेविका-विद्यालय चलाये गये। इन विद्यालयों की दिनचर्या में सामूहिक जीवन, प्रार्थना, सफाई, खादी, शरीरश्रम आदि को स्थान दिया जाता है। १९५५ से ट्रस्ट ने निज के अस्पतालों में प्रसूतिसेविका-प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। मेडिकल प्रशिक्षण में जो बहनें आती हैं वे तीन साल तक अनिवार्य रूप में गांवों में सेवाकार्य करती हैं।

१९७० तक विभिन्न प्रशिक्षण योजनाओं के अंतर्गत प्रशिक्षण पानेवाली बहनों की संख्या इस प्रकार थी :—

	प्रशिक्षण	संख्या
१.	आक्जीलरी नर्स और प्रसूतिसेविका-प्रशिक्षण	६३५
२.	ग्रामसेविका-प्रशिक्षण	६६९
३.	ग्रामसेवा-प्रवेश एवं केंद्रीय स०क० बोर्ड ग्रामसेविका	६६२७
४.	कन्डेन्स कोर्स	७५६
५.	शांतिसेना	३५६
६.	विशिष्ट प्रशिक्षण	३४७३
	कुल योग	१२२१६

उक्त प्रशिक्षण के अतिरिक्त अल्प अवधि के प्रशिक्षण शिविर भी चलाये जाते रहे हैं। ट्रस्ट की ओर से पुनर्संस्कार शिविरों का आयोजन किया जाता रहा है। इसमें प्रान्तीय स्तर पर या कभी-कभी दो-तीन प्रान्तों को मिलाकर एक से चार सप्ताह के शिविर चलाये जाते हैं। इन शिविरों में बालशिक्षा, प्रौढ़शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, सर्वोदय विचार आदि की जानकारी दी जाती है। गाँवों में ग्राम-महिला-शिविरों का आयोजन १९५० से प्रारम्भ हुआ। पिछले दो दशकों में इस प्रकार कुल ३७८ शिविर चले जिसका लाभ १३९४४ ग्रामीण महिलाओं को मिला। इन शिविरों के माध्यम से दूर देहात में रहनेवाली महिलाओं में जागृति लाने का प्रयास किया गया। १९६५-६६ में कत्तिन शिविरों का काम भी ट्रस्ट ने हाथ में लिया। देश के भीतरी इलाकों में अपने-अपने घरों में बंद लगभग १५ लाख कत्तिनें चरखा चला रही हैं। ये कत्तिनें खादी के महत्त्व को समझें, गांधी विचार का सामान्य ज्ञान उन्हें हो तथा जीवन में नये विचार का प्रवेश हो, इस दृष्टि से इस प्रकार के शिविर चलाये जाते हैं।

१९७० तक कुल १४४२ शिविर चलाये गये जिसमें ४१२८४ कत्तिन महिलाओं ने भाग लिया।

इस समय देश भर में कस्तूरबा केंद्रों की कुल संख्या २०७ है, जिनमें ५८६ प्रशिक्षित सेविकाएँ कार्यरत हैं। ट्रस्ट जिस प्रकार की प्रवृत्तियां चलाता है उसके अनुसार केंद्रों का विभाजन तीन वर्गों में किया जा सकता है—(१) ग्रामसेवा-केंद्र, (२) आरोग्य-केंद्र और (३) संयुक्त-केंद्र। जिन केंद्रों पर शिक्षण और उद्योग के माध्यम से काम चलता है, ये ग्रामसेवा-केंद्र कहलाते हैं; जहां स्वास्थ्य सेवाएं दी जाती हैं वे आरोग्य-केंद्र हैं; और जहां दोनों तरह की सेवाएं उपलब्ध हों, वे संयुक्त केंद्र माने जाते हैं। केंद्रों पर आम तौर पर निम्नलिखित प्रवृत्तियां चलाने का प्रयास किया जाता है—बालवाड़ी, प्रसूति-सेवा, प्रौढ़शाला, शिशुशिक्षण, महिलामंडल, रोगी-चिकित्सा, उद्योग-वर्ग, ग्राम-आरोग्य, ग्राम-सफाई, पुस्तकालय। एक केंद्र की जितनी क्षमता होती है उसी के अनुसार वहां की प्रवृत्तियां चलती हैं।

स्त्री-जागरण की दिशा में कस्तूरबा सेविकाओं, विद्यालय की अध्यापिकाओं और छात्राओं को भूदान-ग्रामदान आंदोलन से नयी प्रेरणा मिली। पिछले दो दशकों में उन्होंने भूदान-ग्रामदान, सर्वोदयपात्र, शान्ति सेना इत्यादि कामों में सहयोग दिया। अक्टूबर १९६७ से चार बहनों ने कस्तूरबाग्राम, इंदौर से १२ वर्ष की सतत लोकयात्रा प्रारम्भ की। इनकी यात्रा आज भी चल रही है। लोकयात्रा के इस व्यापक अनुभव का आधार लेकर पिछले दो-तीन वर्षों में प्रान्तीय स्तर पर भी लोकयात्राओं का कार्यक्रम बना और आसाम, बिहार, उड़ीसा में इस प्रकार की यात्राओं पर सेविकाएँ निकली हैं।

१९५२ तक कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट का प्रधान कार्यालय वर्धा में था। १९५१ के मई में यह कार्यालय कस्तूरबाग्राम (इंदौर) में चला गया, जहां ट्रस्ट के पास पर्याप्त जमीन है। यहां कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त कई प्रवृत्तियां चलती हैं। वे इस प्रकार हैं:

१. पूर्व प्राथमिक शिक्षका-प्रशिक्षण (एक वर्षीय अभ्यासक्रम)
२. आॅग्जीलरी नर्स, मिडवाइफ/प्रसूति-सेविका-प्रशिक्षण (दो वर्षीय पाठ्यक्रम)
३. परिवार व शिशु-कल्याण प्रशिक्षण (एक वर्षीय पाठ्यक्रम)
४. बालवाड़ी
५. बुनियादी माध्यमिक शाला
६. रूरल इन्स्टीट्यूट (विश्वविद्यालय डिग्री कोर्स)
७. संगीत विभाग
८. अस्पताल
९. कृषि, पशुपालन आदि ।

इस प्रकार ट्रस्ट का प्रधान कार्यालय महिला प्रशिक्षण के राष्ट्रीय केंद्र के रूप में राष्ट्र की सेवा कर रहा है । गांवों में सैकड़ों प्रशिक्षित महिलाएँ महिला जागृति का काम कर रही हैं, यह ट्रस्ट की खास उपलब्धि है ।

विनोबाजी का प्रयास

स्त्रियों की दशा सुधारने के संदर्भ में इसका भी उल्लेख करना अनुचित न होगा कि विनोबाजी ने भी विशेष प्रयत्न स्त्री-शक्ति को जागृत करने के लिए किये हैं । समाज में स्त्रियों की हीनदशा की जिम्मेदारी वे पुरुषों पर डालते हैं, जिसके परिणामस्वरूप जो 'महिला' थी वह 'अबला' बन गयी । उनका कहना है, "अगर मैं स्त्री होता, तो न जाने कितनी बगावत करता । मैं तो चाहता हूं कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो । लेकिन बगावत तो वह स्त्री करेगी, जो वैराग्य की मूर्ति होगी......स्त्रियां स्वतंत्रता चाहती हैं तो उनको वासना के बहाव में न बहना चाहिए ।" स्त्री-शक्ति का आधार, जैसा दादा धर्माधिकारी का भी कहना है, यही हो सकता है कि वह शारीरिकता के ऊपर मानवता की दिशा में उन्नति करें । कुछ ने इसको 'आध्यात्मिकता' का नाम दिया है, किन्तु विनोबाजी इसको 'ब्रह्मविद्या'

कहते हैं। बहनों में आत्मबल को उत्पन्न करने के लिए ही उन्होंने अपने पवनार आश्रम में ब्रह्मविद्या मंदिर की स्थापना की है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही रहते हैं। व्यवस्था बहनों के हाथ में है। एक अवसर पर उन्होंने कहा था, "बुद्ध ने तो स्त्री को प्रथम प्रवेश नहीं दिया था और दिया तो यह कह कर दिया कि "मैं एक खतरा उठा रहा हूँ"। लेकिन वह तो पुराना जमाना था। मैं तो इसमें खतरा मानता हूँ कि पुरुष के साथ स्त्री को स्थान न हो। उसमें ब्रह्मविद्या अधूरी रहती है, उस ब्रह्म के टुकड़े-टुकड़े होते हैं"। ब्रह्मविद्या मंदिर की बहनें 'मैत्री' नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकालती हैं जो अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी है।

विनोबाजी का यह प्रयास स्वतंत्र प्रयास है। फिर भी ट्रस्ट की संचालिकाएँ और प्रमुख कार्यकर्ता उनसे परामर्श लेते रहते हैं और ब्रह्मविद्या मंदिर की कुछ बहनों ने भी कस्तूरबाग्राम के कार्य में हाथ बटाया है। बहनों की लोकयात्रा के पीछे मुख्यरूप से विनोबाजी की प्रेरणा रही है, और उन्हीं की प्रेरणा के परिणामस्वरूप बहुत-सी बहनों ने बिहार में भूदान का सघन कार्य किया था, और इधर भी कई बहनें वहाँ से सघन ग्रामदानी क्षेत्रों में लगी रहीं हैं और लगी हैं। विनोबाजी का भारत की आधी आबादी को ऊपर उठाने का यह प्रयास पूर्ण स्वतंत्रता की दिशा में ही समाज को ले जाने-वाला है और गांधीजी द्वारा किये गये कार्य का पूरक है।

८

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की नयी रचनात्मक संस्थाएँ

जैसा पहले लिखा जा चुका है, स्वतन्त्र भारत में रचनात्मक कार्य का स्वरूप क्या हो तथा रचनात्मक संस्थाओं का भावी संगठन किस प्रकार का हो, इन प्रश्नों पर मार्च १९४८ में सेवाग्राम के रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन में विचार हुआ था। उसमें प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त कांग्रेस के प्रमुख राजनीतिक नेताओं ने भी भाग लिया था। इसकी अध्यक्षता डा० राजेन्द्र प्रसाद ने की थी।

सर्वोदय समाज

इस सम्मेलन के विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप एक लचीला संगठन और एक संस्था का निर्माण हुआ। उनमें पहला 'सर्वोदय समाज' था। इस भाईचारे के बारे में एक प्रस्ताव में कहा गया, "सत्य और अहिंसा पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना जिसमें जात-पाँत न हो, जिसमें किसी को शोषण करने का मौका न मिले और जिसमें समूह और व्यक्ति दोनों को पूरा-पूरा (सर्वाङ्गीण) विकास करने का पूरा अवसर मिले।" इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचनात्मक कार्यों को इसका साधन माना गया। सेवक (सदस्य) के लिए यह भी शर्त थी कि उसका विश्वास रचनात्मक कार्यक्रमों में होगा और वह उसपर चलने का भरसक प्रयास करेगा। सर्वोदय समाज समिति को ऐसे लोगों का नाम तथा पता रखने का काम दिया गया था, और

योजना यह थी कि ये सेवक साल में एक वार मिला करेंगे जिससे उनके वीच सम्पर्क रहे। प्रारम्भ में इसके लिए ३० जनवरी को मेले की वात सोची गयी थी, किन्तु वाद में यही व्यावहारिक माना गया कि साल में एक निश्चित स्थान पर सर्वोदय सम्मेलन हुआ करे जिसमें रचनात्मक कार्यकर्ता तथा उस कार्य में रुचि रखनेवाले अन्य सभी व्यक्ति भाग लें। इसका आयोजन अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ, जिसका जिक्र आगे है, को सौंपा गया। ये सम्मेलन प्रत्येक वर्ष होते हैं। इधर विनोवाजी तथा सर्वोदय के प्रथम पंक्ति के नेताओं ने कतिपय कारणों से इनमें भाग लेना वन्द-सा कर दिया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि व्यक्ति-नेतृत्व से मुक्त होकर सामूहिक नेतृत्व के विकास की दिशा में यह एक प्रयास है। वैसे सर्व सेवा संघ के पदाधिकारी व्यक्ति उनसे परामर्श लेते ही रहते हैं।

सर्व सेवा संघ

दूसरी संस्था 'सर्व सेवा संघ' है और आजकी रचनात्मक संस्थाओं में इसका स्थान सर्वप्रमुख है। वास्तव में इसकी स्थापना सेवाग्राम सम्मेलन के कुछ वाद ही हुई क्योंकि उसके वारे में वहुत सोच-विचार की जरूरत थी। इसकी स्थापना के विशेष कारण थे। गांधीजी के जीवनकाल में विभिन्न रचनात्मक संस्थाएँ अलग-अलग काम कर रही थीं। उन सवको गांधीजी का मार्गदर्शन प्राप्त था। अतः अलग-अलग काम करते हुए भी उनके कार्यों में सामंजस्य था और उनका लक्ष्य भी एक था। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा उनके निधन से परिस्थिति वदल गयी थी और यह अनुभव होने लगा था कि इन संस्थाओं का एक मिलापी संघ भी होना चाहिए जिससे उनकी शक्ति एवं सामर्थ्य का पूरा उपयोग अहिंसक समाज-रचना के कार्य में हो सके। श्री कुमारप्पाजी का कहना था, "अखिल भारत चरखा संघ, अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ,

हरिजन-सेवक संघ, गोसेवा संघ ये सब हमारी संस्थाएं अपने-अपने क्षेत्र में काम कर रही हैं। पर एक-दूसरे के काम में इनमें सहयोग का अभाव है और सत्य और अहिंसा पर आधारित गांधी-दर्शन पर भी पूरा ध्यान इन्होंने नहीं दिया है। नतीजा यह हुआ है कि हरेक संघ अपने क्षेत्र में तो विशेषज्ञता हासिल करने का प्रयत्न करता है पर अपनी-दूसरी साथी-संस्थाओं के मकसदों का कोई ख्याल नहीं रखता। इस अलगाव की वजह से अपने घेरे (गृह) के बाहर हमारा असर बहुत कम रहा और अन्दर भी हम पूरी तरह गांधीवादी जीवन प्रकट नहीं कर पाये हैं।" बहुत विचार-विमर्श के बाद सर्व सेवा संघ की स्थापना एक मिलापी संघ के रूप में हुई। इसमें दस संस्थाएं शामिल हुई थीं। इसमें प्रत्येक से एक-एक प्रतिनिधि और उनके अतिरिक्त कुछ विशेष सदस्य भी थे।

संघ के विधान में यह स्पष्ट किया गया था कि वह "सलाहकार मण्डल न रहकर एक कार्यकारी संघ होगा, जो सम्बन्धित संघों की कार्य-स्वतन्त्रता को अबाधित रखते हुए जनता में समग्र दृष्टि से सीधे केन्द्र खोलेगा और चलायेगा, सब संघों का समन्वय करेगा व सबको मार्ग-दर्शन देगा।" यह भी कहा गया था—"सम्बन्धित संस्था अपने कार्यक्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतन्त्र रहेगी। उसे साधारण नीति के बारे में सर्व सेवा संघ का मार्गदर्शन मानना होगा, और सब संस्थाओं को समन्वय की नीति का पालन करना होगा।"

अखिल भारत सर्व सेवा संघ के रूप तथा कार्य में बाद में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते गये। कुछ शामिल होनेवाली संस्थाएं, जैसे—चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, गो सेवा संघ, तालीमी संघ—उसमें विलीन हो गयीं, और कुछ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहीं। इन विलीन संस्थाओं में अब कुछ संस्थाएं नयी रजिस्टर्ड संस्थाओं के रूप में फिर से काम कर रही हैं। आज संघ का नाम केवल 'सर्व सेवा संघ' है और वह रचनात्मक संस्थाओं का मिला-जुला

संगठन होने के साथ-साथ लोकसेवक का निष्ठापत्र भरे हुए देश-भर के कार्यकर्ताओं का एक संयोजक संघ भी बन गया है। इसमें प्रत्येक जिला सर्वोदय मंडल से एक-एक प्रतिनिधि आता है और इनसे तथा अध्यक्ष द्वारा मनोनीत कुछ व्यक्तियों से संघ की आम सभा बनती है। यह तीन वर्ष के लिए अपना अध्यक्ष चुनती है और वह अपनी अवधि के काल के लिए एक प्रबन्ध समिति गठित करता है। इन्हीं में से वह मन्त्री आदि की नियुक्ति करता है। संघ के सदस्यों के लिए यह भी एक नियम है कि वे किसी राजनीतिक पक्ष के सदस्य न हों। संघ के निर्णय सर्वसम्मति या सर्वानुमति से होते हैं। संघ के अधिवेशनों में प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अन्य लोक-सेवकों को भी भाग लेने की पूरी छूट है।

सर्व सेवा सघ का उद्देश्य अब इस प्रकार दिया गया है: "सर्व सेवा संघ का उद्देश्य सत्य और अहिंसा पर आधारित ऐसे समाज की स्थापना करना है जो शोषण-रहित और शासन-मुक्त हो। समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना और समग्र व्यक्तित्व का विकास संघ की बुनियादी नीति होगी। समाज में जाति, वर्ण, रंग, लिंग आदि पर आधारित ऊँच-नीच के भेदभाव के उन्मूलन, वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वर्गनिराकरण और परस्पर सहकार की वृत्ति के प्रोत्साहन तथा खादी और विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से कृषि, उद्योग आदि के क्षेत्र में आर्थिक विषमता के निरसन की संघ की नीति रहेगी। संघ सत्य, प्रेम, मैत्री और करुणा की भावनाओं को जागृत करते हुए वैज्ञानिक और आध्यात्मिक साधनों का उपयोग तथा स्वतन्त्र जनशक्ति का निर्माण साम्ययोगी अहिंसक क्रान्ति के लिए करेगा।

१९५२ में सर्व सेवा संघ ने विनोबाजी के नेतृत्व में भूदान आन्दोलन चलाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया, और आज सर्वोदय आन्दोलन के विविध अंगों की जिम्मेदारी इसी पर है। संघ देश भर में फैले कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन करता है। उनके विरुद्ध

कोई अनुशासन की कार्रवाई नहीं करता। अपने काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए वह समितियों तथा उपसमितियों द्वारा काम करता है। ये प्रमुख विभिन्न समितियाँ—प्रकाशन समिति, अखिल भारतीय शान्ति सेना मण्डल, खादी-ग्रामोद्योग समिति, ग्रामस्वराज्य समिति, कृषि-गो सेवा समिति, नई तालीम समिति, ग्रामदान समिति, खादी ग्रामोद्योग प्रयोग समिति आदि हैं। संघ के तत्त्वावधान में एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में सर्वोदय-विचार का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन और संशोधन काशी का गांधी विद्या संस्थान करता है। संघ का कार्यालय वर्धा में है और वह कई पत्रिकाओं को निकालता है। संघ द्वारा प्रवर्तित सभी प्रवृत्तियों की आर्थिक आवश्यकता विभिन्न स्रोतों से पूरी की जाती है। १९५८ से संघ का आग्रह सरकार तथा किसी संचित निधि से सहायता न लेकर, सम्पत्तिदान, सूतांजलि, सर्वोदय-पात्र, सर्वोदय मित्रों से प्राप्त वार्षिक दान तथा अन्य दान से कार्य चलाने का है।

लोकसेवक

संघ के सदस्य लोकसेवकों का जिक्र ऊपर किया गया है। एक लोकसेवक को एक निष्ठापत्रक पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं जिसकी निम्न शर्तें हैं :—

१. सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और शरीरश्रम में मेरी निष्ठा है और तदनुसार जीवन बिताने की मैं कोशिश करूँगा।
२. लोकनीति की स्थापना से ही दुनिया में सच्ची स्वतन्त्रता हो सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है, इसीलिए मैं किसी प्रकार की दलीय राजनीति में या सत्ता की राजनीति में भाग नहीं लूंगा। भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों के व्यक्तियों का सहयोग लेने की मेरी वृत्ति और प्रयत्न रहेगा।
३. बिना किसी कामना के, समर्पण-बुद्धि से मैं लोकसेवा करता रहूंगा।

४. जाति (कास्ट) वर्ग या पन्थ के किसी प्रकार के संकुचित भेदों को मैं जीवन में स्थान नहीं दूंगा।

५. अपनी आजीविका के लिए लगनेवाले समय एवं चिन्तन को छोड़कर बचे हुए समय एवं चिन्तन का मुख्य अंश सर्वोदय के प्रत्यक्ष साधन-स्वरूप भूदान-यज्ञमूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति के काम में लगा दूंगा।

६. मैं प्रतिवर्ष रु० ३.६५ या ६ मीटर गुंडी सूत सदस्यता शुल्क के रूप में दूंगा।

सर्व सेवा संघ तथा उन संस्थाओं के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है, कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ भी हैं जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

गांधी स्मारक निधि

गांधीजी के निधन के बाद कांग्रेस की कार्यकारिणी ने यह निश्चय किया कि उनकी स्मृति सदैव बनाये रखने के लिए एक राष्ट्रीय स्मारक कोष (गांधी स्मारक निधि) प्रारम्भ किया जाय और इस दिशा में प्रारम्भिक कदम उठाने का अधिकार राजेन्द्र प्रसाद जी को, जो उस समय कांग्रेस अध्यक्ष थे, दिया गया। इसके परिणामस्वरूप एक अस्थायी समिति बनी जिसने निधि के लिए जनता से अपील की। इस स्मारक निधि एकत्रित करने के पीछे उद्देश्य यह था कि देश में इसकी सहायता से रचनात्मक कार्यक्रम चलाये जायेंगे, गांधीजी के लेखों, पत्रों इत्यादि को एकत्रित करके सुरक्षित रखा जायेगा और उनका प्रकाशन किया जायेगा। गांधीजी की वस्तुओं का भी संग्रहालय बनाया जायेगा। इन सब में प्रमुख उद्देश्य तो रचनात्मक कार्यों द्वारा उनके विचारों को मूर्तरूप देने का था जिससे उनके स्वप्न के भारत का निर्माण हो सके। निधि के एकत्रित होने तथा केन्द्र तक पहुँचने में समय लगा। १९५० के अन्त तक लगभग ११ करोड़ रुपया एकत्रित हो गया। इस बीच अस्थायी समिति का स्थान फरवरी १९४९ में एक

ट्रस्ट ने ले लिया था। एक कार्यकारिणी का भी निर्माण हुआ था। ट्रस्ट पत्र में रचनात्मक कार्य सम्बन्धी उद्देश्य का विशदीकरण किया गया था। उसके अनुसार निधि को उन विभिन्न रचनात्मक कार्य-कलापों का संचालन और वर्धन करना है जिनसे गांधीजी का सम्बन्ध रहा था अथवा जो उनके आदर्श की ओर ले जानेवाले हैं। इन कार्य-कलापों से सम्बन्धित संगठनों, आश्रमों तथा संस्थाओं की स्थापना और भरण-पोषण करना है। इनको चलाने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करनी है। इन कार्यक्रमों में कुष्ठ सेवा तथा नयी तालीम का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

निधि को संगठन की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया गया (१) केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि और (२) प्रदेशीय गांधी स्मारक निधि। लगभग सभी प्रदेशों में प्रदेशीय गांधी स्मारक निधि हैं जो प्रादेशिक कार्य को देखती तथा उनका संचालन करती हैं। केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि का कार्यालय राजघाट, नयी दिल्ली में है।

गांधी शताब्दी के पहले तो गांधी निधि रचनात्मक कार्य में दो प्रकार हाथ बँटाती थी : (१) कुछ कार्यों को, अपने ध्येय की पूर्ति के लिए वह स्वयं करती थी; और (२) रचनात्मक क्षेत्र में लगी संस्थाओं तथा व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देती थी। जिन प्रवृत्तियों को सहायता दी गयी उनमें कुछ इस प्रकार हैं :—

१. ग्रामसेवा—पहाड़ी क्षेत्रों में कार्य, ग्रामरचना, पुनर्निर्माण, भूदान, ग्रामदान इत्यादि।
२. गांधी विचार प्रचार—तत्त्वप्रचार-केन्द्र, साहित्य-वितरण या पुस्तकालय, शान्तिकार्य इत्यादि।
३. शिक्षा—बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़शिक्षा, प्रशिक्षण, छात्रवृत्ति इत्यादि।
४. स्वास्थ्य—प्राकृतिक और कुष्ठ चिकित्सा।
५. नारी तथा शिशुकल्याण—कस्तूरबा ट्रस्ट, अन्य संस्थाएँ।

६. खादी-ग्रामोद्योग
७. कृषि-गो-सेवा
८. मद्यनिषेध
९. संग्रहालय व अन्य स्मारक
१०. दलित सेवा—आदिवासी, हरिजन तथा घुमन्तु जनसेवा
११. रचनात्मक संस्थाएँ।

इन मदों में सबसे अधिक सहायता ग्रामसेवा के अन्तर्गत की गयी है और इसमें भूदान-ग्रामदान को सहायता मिली है। १९६६ तक एक-एक करोड़ रुपये के लगभग २,३,४ और १२ मद पर खर्च किये गये। इससे स्पष्ट है कि महत्त्वपूर्ण कार्यों पर पर्याप्त धन खर्च किया गया। मद्यनिषेध के कार्यक्रम पर, जिसपर गांधीजी बड़ा बल देते थे लगभग सात लाख रुपये खर्च किये गये।

गांधी शताब्दी के बाद गांधी स्मारक निधि ने अपने कार्यों को विकेन्द्रित तथा सीमित करने का निर्णय लिया। निधि के वित्तीय तथा प्रशासनिक काम के अतिरिक्त तीन कार्यों पर उसका मुख्य ध्यान केन्द्रित किया गया। ये हैं: (१) गांधी प्रेरित प्रवृत्तियों का सूचना केन्द्र चलाना; (२) कार्यकर्ताओं को गांधी-विचार के अध्ययन तथा आपसी भाईचारा बढ़ाने की प्रेरणा देना; और (३) एक मंच प्रदान करना जिसपर कार्यकर्ता अपने अनुभवों को एक-दूसरे के सामने रख सकें और सम्मिलित कार्यवाई का सर्वमान्य कार्यक्रम बना सकें। पहली मद के अन्तर्गत निधि द्वारा देश में चल रहे गांधी प्रेरित केन्द्रों तथा संस्थाओं की व्यवस्थित जानकारी रखने का प्रयास चल रहा है। देश के कार्यकर्ताओं की एक डाइरेक्टरी भी प्रकाशित की गयी है। दूसरी मद के अन्तर्गत अभी 'संस्थाकुल' नाम का एक मासिक सूचनापत्र अंग्रेजी और हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है तथा कार्यकर्ताओं में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ सर्वोदय विचार परीक्षाएँ भी चलायी जा रही हैं। तीसरी मद के अन्तर्गत गांधी-प्रेरित संस्थाओं के

प्रनिनिधियों का सम्मेलन वर्ष में एक बार बुलाया जाता है और उनसे संपर्क बनाये रखा जाता है।

गांधी स्मारक कुष्ठ प्रतिष्ठान

प्रादेशिक गांधी निधियों को स्वायत्तता देने के अतिरिक्त केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि ने कुछ और केन्द्रीय संस्थाओं को भी कार्य की दृष्टि से स्वायत्तता प्रदान की है। इनमें तीन विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं—

१. गांधी स्मारक कुष्ठ प्रतिष्ठान (गांधी मेमोरियल लेप्रोसी फाउन्डेशन)
२. गांधी स्मारक संग्रहालय समिति
३. गांधी शान्ति प्रतिष्ठान।

कुष्ठ प्रतिष्ठान की स्थापना १९५१ में हुई थी और इसका केन्द्र वर्धा है। यह कुष्ठ-सेवा तथा उसके निर्मूलन के लिए देश के विभिन्न भागों में चार नियंत्रण केन्द्र चलाता है; सर्वेक्षण का तथा कुष्ठसेवा का प्रशिक्षण-कार्य करता है। पुस्तिकाओं तथा फिल्म के माध्यम से जनता को इस बीमारी के बारे में शिक्षित किया जाता है।

गांधी स्मारक संग्रहालय समिति

गांधीजी की स्मृति को ताजा बनाये रखने के लिए दिल्ली तथा देश के अन्य कई भागों में संग्रहालय हैं। नई दिल्ली में गांधी राष्ट्रीय संग्रहालय के साथ राष्ट्रीय पुस्तकालय भी है जिसका उपयोग गांधीजी तथा गांधी-विचार पर शोध करनेवाले छात्र करते हैं। ऐसे पुस्तकालय अन्य स्थानों पर भी संग्रहालयों के साथ हैं। इनकी देखरेख गांधी स्मारक संग्रहालय समिति करती है। विशेष अवसरों पर संग्रहालय में गोष्ठियां तथा प्रदर्शनियाँ की जाती हैं। गांधी-जीवन सम्बन्धी फिल्में भी दिखायी जाती हैं। एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकाली जाती है।

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान की स्थापना १९५९ में हुई थी।

इसका उद्देश्य यह है कि सभी लोग सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को स्वीकार करके आचरण करें। भारत में इसके लगभग ५० केन्द्र हैं और ये केन्द्र छात्रों, अध्यापकों तथा विभिन्न वर्गों में गांधीजी के विचारों के प्रचार के लिए अध्ययनवर्ग, गोष्ठियाँ, सभाएँ इत्यादि आयोजित करते हैं। प्रतिष्ठान ने शहरी क्षेत्रों में हिंसक कार्यों के विरुद्ध जनता की अन्तरात्मा को गतिमान करने के लिए नागरिक शान्ति समितियों की स्थापना की है। इसका प्रकाशन विभाग हिंदी और अंग्रेजी में उपयुक्त पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त 'गांधीमार्ग' नामक त्रैमासिक हिन्दी तथा अंग्रेजी पत्र निकालता है। यह शोधकार्य भी कराता है और एक शान्ति अनुसंधान पुस्तकालय विकसित कर रहा है। विभिन्न शोध-छात्रों तथा अनुसंधान-संस्थाओं को शान्ति सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं के व्यवस्थित अध्ययन के लिए इसने अनुदान भी दिया है।

प्रतिष्ठान आरम्भ से ही विश्वशान्ति के लिए कार्य करता रहा है। १९६० में उसने एक अणुशस्त्र-विरोधी सम्मेलन भी बुलाया था जिसमें विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। उसके बाद एक-एक प्रतिनिधि मण्डल भी रूस और संयुक्त राज्य अमरीका, वहां की सरकारों के शीर्षस्थ व्यक्तियों से मिलने गया था।

नशाबन्दी परिषद्

अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद् की स्थापना १९६२ में मद्यपान के विरुद्ध प्रचार करने के लिए हुई थी। मद्यनिषेध के कार्य को प्रोत्साहन देने के काम में यह परिषद् स्थानीय अधिकारियों तथा प्रादेशिक और राष्ट्रीय सरकारों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करती है। मद्यपान के दोषों से जनता को अवगत कराती है और कुछ शिक्षा-संस्थाओं में इसने 'सेल' भी स्थापित किये हैं। मद्यनिषेध कराने के लिए राजस्थान सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह भी किया गया। कुछ

स्थानों पर, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के उत्तराखण्ड क्षेत्र में शराब की दूकानों को बंद कराने के सत्याग्रह हुए हैं।

जनवरी १९७० में दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय मद्यनिषेध सम्मेलन भी आयोजित किया गया था। नशाबंदी प्रचार कार्य के लिए यह पैम्फलट प्रकाशित करती, फिल्म दिखलाती और प्रदर्शनियाँ आयोजित करती है।

इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है।

खादी एवं ग्रामोद्योग की संस्थाएँ

इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि अपने तीसरे युग में चर्खा संघ ने विकेन्द्रीकरण की नीति अपनायी थी। इसके परिणामस्वरूप खादीकार्य अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं द्वारा किया जाने लगा। कुछ संस्थाएँ प्रांतीय स्तर की हैं, तो कुछ जिला या इससे भी छोटे स्तर की हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद सरकार ने भी खादी एवं ग्रामोद्योग के कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए कानून बनाया और १९५२ में राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारत खादी ग्रामोद्योग बोर्ड बना जो खादी तथा ग्रामोद्योगों को आर्थिक मदद देता था। १९५६ से नये कानून के अन्तर्गत अब अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग कमीशन खादी एवं ग्रामोद्योग का कार्य देखता है। राज्यों में खादी व ग्रामोद्योग का विकास हो तथा राज्यों की योजना के अंतर्गत इस कार्य को मदद मिले, इस दृष्टि से प्रायः सभी राज्यों में राज्य स्तर पर खादी-ग्रामोद्योग बोर्ड, राज्य के कानून के अन्तर्गत, बने हैं। इस प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद खादी एवं ग्रामोद्योगों को कुछ हद तक सरकारी मदद प्राप्त हो गयी है।

खादी-ग्रामोद्योगों की रचनात्मक संस्थाओं एवं खादी कमीशन और प्रादेशिक बोर्डों ने ग्रामस्वराज्य की दिशा में कुछ प्रयास किये हैं। समग्र विकास की दृष्टि से सघन विकास क्षेत्रों की योजना खादी कमीशन ने बनायी थी और इसके अन्तर्गत देश के कुछ चुने हुए क्षेत्रों

को सघन कार्य के लिए चुना गया था। माना यह गया था कि ये क्षेत्र खादी और ग्रामोद्योगों के माध्यम से समग्र विकास की ओर बढ़ेंगे, व्यक्ति स्वावलम्बी बनेंगे और ग्राम अथवा क्षेत्र-स्वावलम्बन सधेगा।

इसी प्रकार ग्राम इकाई की योजना भी चली। इसके अन्तर्गत गांव को इकाई मानकर ग्रामस्वराज्य का विचार प्रचार एवं आगे चलकर ग्राम-स्वावलम्बन की योजना बनाने की बात थी। ये दोनों योजनाएँ खादी कमीशन की ओर से चलीं परन्तु कतिपय कारणों से इनमें अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी।

वर्तमान स्थिति में खादी संस्थाएँ खादी कमीशन एवं राज्य खादी बोर्ड की नीति के अनुसार खादी-ग्रामोद्योग का कार्य करती है। इस समय उनकी पूरी शक्ति खादी-ग्रामोद्योग के व्यापारिक पक्ष को मजबूत बनाने में लगी है और इनपर खादी कमीशन की नीति-रीति का पूरा प्रभाव है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि ये संस्थाएँ स्वायत्त अस्तित्व रखती हैं और इस कारण वे अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कम या अधिक मात्रा में भूदान-ग्रामदान अथवा ग्रामस्वराज्य आन्दोलन में कभी-कभी मदद करती हैं।

गांधी सेवा संघ

अन्त में गांधी सेवा संघ का भी उल्लेख करना उपयुक्त ही होगा। यह संस्था गांधीकाल की सम्भवतः सबसे पुरानी संस्था है किन्तु एक दूसरी दृष्टि से इसकी गणना नवीन संस्थाओं में की जा सकती है। १९२३ में स्थापित इस संस्था का १९७० में जीर्णोद्धार-सा हुआ है। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि १९४६ और १९७० के बीच यह संस्था एक प्रकार से सुप्त पड़ी हुई थी।

इसका जन्म १९२३ में उस समय हुआ था जब गांधीजी जेल में थे और उनके आदर्श तथा लक्ष्य खतरे में थे। संघ की नीति तथा कार्यक्रम का विकास कांग्रेस की नीति तथा कार्यक्रम के साथ होता गया और इसके परिणामस्वरूप वह गांधीजी के सिद्धान्तों का अनुसरण

करनेवाली एक राष्ट्रीय सेवा की संस्था बन गयी थी। १९३४ में उसका कार्यक्रम अधिक स्पष्ट तथा निश्चित बना, और उसके संविधान में इस प्रकार का संशोधन हुआ जिससे अधिक लोग उसके सदस्य बन सकें। १९३६ में इसकी सदस्य संख्या १०० थी और वे सब व्यक्तिगत सार्वजनिक जीवन में सत्य और अहिंसा के पालन का व्रत लिये हुए थे। १९४० में गांधीजी के परामर्श से संघ की केवल कार्यकारिणी बनी रही, शेष सदस्यता समाप्त कर दी गयी थी। एक प्रकार से यह संस्था का विघटन था। इसका कारण यह था कि एक साधारण रचनात्मक संस्था के रूप में इसका कोई उपयोग नहीं दीखता था क्योंकि विभिन्न रचनात्मक कार्यों को करनेवाली दूसरी संस्थाएँ थीं। अतः यह लगा कि इसको अध्ययन तथा अन्वेषण का कार्य करना चाहिए। किन्तु इसके लिए योग्य व्यक्तियों के अभाव में इसका रूप तथा कार्य उस समय तक के लिए लघु कर दिये गये जब तक वह इसके लिए योग्य न हो जाये। कार्यकारिणी का कार्य केवल प्रशासनिक, आर्थिक सहायता देना तथा 'सर्वोदय' मासिक प्रकाशन रह गया था।

१९४० तक इसका सम्मेलन प्रत्येक वर्ष देश के किसी न किसी एक भाग में हुआ करता था और कई दिनों तक चलता था। १९४० के बाद केवल कार्यकारिणी की बैठक होने लगी थी। १९४८ के बाद सर्वोदय समाज की स्थापना और भूदान आन्दोलन के जन्म से संस्था वैधानिक रूप से बने रहने पर भी प्रकाश में नहीं रही। अब फिर इसको सक्रिय बनाने का प्रयास है। इस समय इसके अध्यक्ष अण्णा साहब सहस्रबुद्धे हैं और मन्त्री दत्तोबा दास्ताने हैं। इसका कार्यालय सेवाग्राम (वर्धा) में है, और अब इसका उद्देश्य सर्वोदय विचार तथा अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यों का समीक्षण तथा अन्वेषण है। इस प्रकार इसने अब वह कार्य प्रारम्भ किया है जिसका परामर्श गांधीजी ने १९४० में दिया था।

९

स्वतन्त्रता के बाद रचनात्मक कार्य-१

भूदान आन्दोलन

स्वतंत्रता-प्राप्ति से ही गांधीजी के रामराज्य का स्वप्न पूरा नहीं हुआ था। अब रचनात्मक कार्य की दिशा क्या हो, यह प्रश्न मार्च १९४८ में सेवाग्राम रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन के सम्मुख था। उस समय तो लोगों के सामने शरणार्थियों को बसाने तथा देश में शान्ति स्थापना का कार्य ही प्रमुख था। इस सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया था कि कार्यकर्ताओं का नेतृत्व विनोबाजी को करना है। अतः लोगों के कहने पर विनोबाजी ने दस महीने शरणार्थियों के बीच में काम किया, उनमें कटुता और अविश्वास दूर करने का प्रयास किया तथा दिल्ली के निकट मेवों की, जो मुसलमान थे, समस्या के समाधान में लगे रहे। उसके पश्चात् पूरे देश पर दृष्टि डालने के उद्देश्य से उत्तर तथा दक्षिण के कई प्रदेशों का दौरा किया और सर्वोदय-विचार, सर्वोदय समाज का रुख तथा ध्येय को जनता के सामने रखा। फिर बीमारी के कारण अपने पवनार आश्रम (वर्धा) में लौटाने पर कांचन-मुक्ति का प्रयोग आरम्भ किया। इसका उद्देश्य जीवन में पैसे की दासता से मुक्त होना तथा बुद्धिपूर्वक किये गये उत्पादक श्रम की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक सक्षमता की खोज करना था। विनोबाजी का यह विचार रहा है कि पैसे का उपयोग न्यूनतम होना चाहिए और खेतिहर मजदूरों को मजदूरी अन्न के रूप में मिलनी चाहिए तथा सरकार को लगान भी अन्न में ही लेना चाहिए।

१९५१ के शिवरामपल्ली (हैदरावाद) में आयोजित सर्वोदय सम्मेलन में विनोवाजी को साथियों के आग्रह पर जाना पड़ा। यह वह समय था जब हैदरावाद राज्य के तेलंगाना प्रदेश में अशान्ति थी। इसका कारण यह था कि हैदरावाद के निजाम स्वतंत्र रहने का सपना देख रहे थे और राज्य में रजाकारों का (जो मुसलमानों का एक अर्द्ध-सैनिक दल था) आतंक वढ़ रहा था। ऐसी स्थिति में जमींदार लोग अपने गांवों को छोड़कर भाग गये और उनकी अनुपस्थिति में उनकी भूमि पर छोटे किसानों और भूमिहीनों ने कब्जा कर लिया। भारतीय पुलिस कार्रवाई के वाद जब रजाकार आन्दोलन समाप्त हो गया, तव ये जमींदार वापस आये और पुलिस की सहायता से अपनी भूमि छीनने लगे। इसका प्रतिकार भूमिहीन जनता ने साम्यवादियों के नेतृत्व में किया और इस प्रकार भूमि के प्रश्न को लेकर अशान्ति उत्पन्न हो गयी।

सम्मेलन के वाद विनोवाजी ने उस प्रदेश की पदयात्रा प्रारम्भ की। इसके पहले हैदरावाद जेल में वंद साम्यवादियों से भेंट की थी और उनको समझने-समझाने का प्रयास किया था। १८ अप्रैल को विनोवाजी नालगोंडा जिले के पोचमपल्ली ग्राम पहुँचे। यह गांव साम्यवादियों का केन्द्र माना जाता था। वहाँ के हरिजनों ने विनोवाजी से कहा, 'वावा, हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं। आप हमें थोड़ी सी जमीन दिला देते, तो हमारा संकट टल जाता''। विनोवाजी के पूछने पर उन्होंने कहा कि ८० एकड़ से काम चल जायेगा। पहले विनोवाजी ने सरकार से भूमि दिलाने की वात सोची और उनसे सरकार के नाम प्रार्थना-पत्र भी ले लिया। किन्तु वाद में यह सोचकर कि सरकार से भूमि मिलने में कम से कम देर तो लग ही सकती है, उन्होंने प्रार्थनासभा में उनके लिए भूमि की मांग रखी। उस समय अपने तथा अपने भाइयों की ओर से रामचन्द्र रेड्डी ने १०० एकड़ भूमि देना स्वीकार किया। इससे विनोवाजी को यह

लगा कि भूमि-समस्या का हल इस प्रकार भी किया जा सकता है। और यहां से भूदान-यज्ञ की धारा फूट निकली।

इस क्षेत्र की दो महीने की पदयात्रा में १२ हजार एकड़ जमीन भूदान में विनोबाजी को मिली। वहां से वर्धा लौटने पर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने उनको प्रथम पंचवर्षीय योजना पर बात करने के लिए दिल्ली बुलाया। विनोबाजी ने दिल्ली पैदल जाने का निश्चय किया, और १२ सितम्बर १९५१ को मध्य प्रदेश होते हुए दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में भूमि का दान मांगते गये, जिसके फलस्वरूप दिल्ली तक उन्हें १८ हजार एकड़ भूमि प्राप्त हो गयी थी।

यह एक महत्त्वपूर्ण बात थी। क्योंकि तेलंगाना के विपरीत, मध्य प्रदेश में साम्यवादी आन्दोलन का अभाव था। दिल्ली के बाद विनोबाजी ने उत्तरप्रदेश की यात्रा की और अप्रैल १९५२ तक एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो चुकी थी। इसी माह सेवापुरी (वाराणसी) में सर्वोदय सम्मेलन हुआ जिसमें आन्दोलन को पूरे देश में व्यापक करने तथा दो वर्ष में पूरे देश में २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया गया। इस प्रकार यह आन्दोलन देशव्यापी बन गया।

१९५२ के सितम्बर में विनोबाजी उत्तरप्रदेश से बिहार में प्रवेश किया और बिहारवालों से ५० लाख एकड़ भूमि की मांग की। यह मांग बाद में घटा कर ३२ लाख एकड़ कर दी गयी थी, और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए देश भर के कार्यकर्ताओं को वहां लगा दिया था। विनोबाजी ने स्वयं २७ महीने इस प्रदेश में बार-बार सब जिलों की यात्रा की। उनके प्रदेश छोड़ने पर २९ लाख एकड़ भूमि वहां मिल चुकी थी। पूरे देश के लिए ५ करोड़ एकड़ भूमि का लक्ष्यांक निश्चित किया गया था और यह अपेक्षा रखी गयी थी कि १९५७ तक यह पूरा हो जायेगा।

इसी बीच उड़ीसा में ग्रामदान मिलने प्रारम्भ हो गये थे, और इस प्रकार धीरे-धीरे भूदान-आन्दोलन, ग्रामदान आन्दोलन का रूप लेता चला गया। जहां तक भूमिदान का संबंध है, १९५३ तक भूदान में लगभग ४२ लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो गयी थी।

यह आन्दोलन तथा ग्रामदान आन्दोलन एक ठोस वैचारिक आधार पर खड़े हैं। यह अवश्य है कि आन्दोलन की प्रगति के साथ-साथ ही उसके दर्शन का भी विकास होता रहा है। विनोवाजी सदैव इस बात पर बल देते रहे हैं कि भूमि का दान देना किसी पर उपकार करना नहीं। जमीन जीवन का आधार है और उसपर सबका उसी प्रकार हक है जैसे वायु और सूर्य के प्रकाश पर है। 'दान' शब्द पर आपत्ति किये जाने पर कि उससे उपकार की भावना झलकती है, उन्होंने उसका अर्थ 'संविभाग' (समान वितरण) बताया है। यह आन्दोलन भिक्षा का आन्दोलन न होकर दीक्षा का आन्दोलन है। इसमें भूमिहीनों के अधिकार की मांग है। यह आन्दोलन निजी स्वामित्व की भावना को गलत मानता है और यह स्वामित्व-विसर्जन का आन्दोलन है। भूदान यज्ञ के लाभ बताते हुए विनोवाजी ने सात बातें कही हैं :—

१. गरीबी का नाश होगा।
२. भूमि के मालिकों के हृदय में प्रेमभाव का विकास और उनके फलस्वरूप देश का नैतिक वातावरण उन्नत होगा।
३. भूस्वामियों और सर्वहारा भूमिहीन गरीबों के बीच दिखाई देनेवाला वर्ग-भेद दूर होगा, परस्पर प्रेम तथा सद्भाव का बंधन दृढ़ होगा और इससे समाज शक्तिशाली बनेगा।
४. यज्ञ, दान, तप इन तीनों के अपूर्व दर्शन के आधार पर जो भारतीय संस्कृति तैयार हुई है, उसका पुनरुत्थान और उन्नति होगी। मनुष्य का धर्म-विश्वास दृढ़ होगा।

५. देश में शान्ति स्थापित होगी।
६. देश में शांति स्थापित होने से विश्व-शान्ति की स्थापना में सहायता मिलेगी।
७. भूदानयज्ञ द्वारा विभिन्न राजनीतिक दल परस्पर निकट आयेंगे और एक साथ मिलकर काम करने का सुअवसर पायेंगे।

विनोबाजी के अनुसार भूदानयज्ञ को तीन दृष्टियों से देखा जाना चाहिए :—

१. दया,
२. समाजरचना और
३. नैतिक उपायों का अवलंबन या अहिंसक समाज-रचना का प्रयोग।

वितरण

भूमि का प्राप्त करना उसके वितरण से कहीं सरल काम था। पहली बात तो यह थी कि वितरण के नियम ऐसे होने चाहिए जिसमें गलत वितरण की गुंजाइश न्यूनतम हो। दूसरे, वितरण का कार्य ठीक प्रकार ऐसा ही व्यक्ति कर सकता था जिसका परिचय गांव की कागजात-पद्धति से हो। तीसरे, यह बगैर सरकारी तंत्र के सहयोग के नहीं हो सकता था। अतः विनोबाजी ने वितरण के लिए उचित नियम बनाये और वितरण के लिए अनुभवी व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त किया गया। प्रादेशिक सरकारों ने भी भूदान-कानून पास करके और प्रान्तीय भूदान समितियों का निर्माण करके इस कार्य में सहायता दी। किन्तु इस सब में देर लगना स्वाभाविक था। अतः यह कार्य अत्यन्त धीमी गति से हुआ और बाद में विनोबाजी ने बजाय दानपत्र के वितरण के पत्र मांगने आरंभ किये थे। इसका मतलब यह था कि दाता स्वयं किसी सुपात्र भूमिहीन को अपनी भूमि दे और उसकी सूचना विनोबाजी को भेज दे। तिसपर भी १९६३ तक प्राप्त ४२

लाख एकड़ भूमि में से केवल साढ़े दस लाख भूमि का वितरण हो सका था और १५ लाख एकड़ भूमि कृषि के लिए अयोग्य पायी गयी थी।

प्रभाव

इस आन्दोलन ने कार्यकर्ताओं तथा जनता में नया जीवन संचार किया था क्योंकि इसमें क्रान्तिकारी तत्त्व विद्यमान थे। यह कार्यक्रम सरकार के पेट में समा जाने वाला कार्यक्रम नहीं था। इसको केवल लोकशक्ति के आधार पर किया जा सकता था। इसका प्रभाव रचनात्मक संस्थाओं पर भी पड़ा था और उनका सहयोग इसको मिला था। प्रारम्भ के वर्षों में इसका रूप जन-आन्दोलन का था और उस समय यह लोगों को गांधीजी द्वारा चलाये गये आन्दोलनों की स्मृति दिलाता था। किन्तु कतिपय कारणों से बाद में इसका वह बाहरी रूप तो किसी भी मात्रा में नहीं रह सका।

अन्य दान

इस आन्दोलन के संदर्भ में कुछ अन्य प्रकार के दान का उल्लेख भी अत्यावश्यक लगता है। गरीब भूमिहीन किसान को खेती के साधन दिलाना भी आवश्यक था। अतः साधनदान की बात विनोबाजी के उत्तर प्रदेश यात्रा-काल में ही प्रारम्भ हो गयी थी। बिहार में उन्होंने संपत्तिदान की बात देश के सम्मुख रखी। इसमें दाता अपनी आय का कुछ निश्चित भाग सर्वोदय के कार्य के लिए कम-से-कम पांच वर्ष तक देने का वादा करता है। प्रारम्भ में जीवनभर के लिए दानपत्र भरता था और विनोबाजी का आग्रह आय के छठे भाग का रहता था। किंतु अब उतनी की अपेक्षा नहीं है। इसके पीछे दो उद्देश्य थे। एक तो सर्वोदय कार्य में लगे कार्यकर्ताओं के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था करना था, और दूसरे नगर में रहनेवालों में स्वामित्व-विसर्जन की भावना पैदा करना था। इसमें यह

भावना भी निहित थी कि अनुचित ढंग से आय पैदा नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार इसमें व्यवहारशुद्धि की बात आ जायेगी।

भूदान आंदोलन की प्रगति के साथ श्रमदान का महत्त्व भी बढ़ गया क्योंकि सभी प्रकार की भूमि प्राप्त हुई थी। कृषि के अयोग्य भूमि को खेती के योग्य बनाना, कुओं का खोदना, यह सब आदाता की शक्ति के बाहर की बात थी। इसमें सामूहिक शक्ति लगाने की जरूरत थी। अतः श्रमदान की मांग करनी पड़ी थी। ऐसे ही कुछ कार्यों के लिए पढ़े-लिखे लोगों से बुद्धिदान की मांग की गयी थी।

कार्यकर्ताओं के अभाव को दूर करने के लिए जयप्रकाश नारायण ने १९५४ के बोधगया सम्मेलन के अवसर पर सर्वप्रथम अपना 'जीवनदान' दिया था और उनका अनुकरण उनकी सहधर्मिणी प्रभावती बहन ने किया। फिर विनोबाजी ने अपना जीवन 'भूदानयज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति' के लिए समर्पित किया, और उसके बाद ऐसे जीवनदान का तांता लग गया था। प्रारम्भ में बहुत उत्साह था, किंतु बाद में कई कारणों से उसमें कमी आ गयी थी। जीवनदानियों में बहुत-से छोड़ गये, कुछ अब रहे भी नहीं, किन्तु फिर भी कुछ आज भी सहयोग दे रहे हैं, और इन सभी के कारण उस समय तो आन्दोलन ने गति पकड़ी ही थी।

१०

स्वतंत्रता के बाद रचनात्मक कार्य - २

त्रिविध कार्यक्रम

आज क्रान्तिकारी रचनात्मक अथवा सर्वोदय कार्यक्रम के तीन अंग हैं :—ग्रामदान, शांति सेना, और ग्रामाभिमुख खादी। इस अध्याय में इनका वर्णन है।

१. ग्रामदान

ग्रामदान आंदोलन का इतिहास

ग्रामदान-आंदोलन भूदान आंदोलन का ही एक विकसित रूप है। भूदान का पहला कदम था कि गांव में कोई भूमिहीन नहीं रहना चाहिए ; और उसका अंतिम कदम है कि कोई भूमिमालिक नहीं रहना चाहिए। इस दृष्टि से भूदान-ग्रामदान आंदोलन को तीन काल में विभाजित किया जा सकता है—१. भूदान, २. ग्रामदान, ३. सुलभ ग्रामदान। परन्तु इनके बीच कोई कठोर विभाजन-रेखा खींचना संभव नहीं है।

ग्रामदान भी प्राप्त हो सकता है, इसकी संभावना १९५१ में अकस्मात् उत्तर प्रदेश में सामने आयी थी। उस वर्ष मई में विनोबाजी को हमीरपुर जिले के मंगरौठ ग्राम के निवासियों ने अपनी सारी भूमि उनमें पुनः वितरण के लिए अर्पित कर दी थी। किंतु दो वर्षों

तक वह एकाकी ग्रामदान रहा। बाद में विनोबाजी की बिहारयात्रा के समय उड़ीसा का पहला ग्रामदान जनवरी १९५३ में प्राप्त हुआ और फिर १९५५ में तो कोरापुट में ग्रामदान की गंगा ही बह निकली थी। और भूदान आंदोलन का रूप ग्रामदान में परिणत होता गया।

उड़ीसा में जैसे-जैसे विनोबाजी दक्षिण की ओर बढ़ते गये और फिर दक्षिण से उत्तर की ओर, वैसे-वैसे ग्रामदानी गाँवों की संख्या में वृद्धि होती गयी। सितम्बर १९५७ में मैसूर में येलवाल नामक स्थान पर एक परिषद् हुई जिसमें देश के विभिन्न राजनीतिक नेताओं ने भाग लिया। उन्होंने ग्रामदान का स्वागत किया। परिषद् में पारित प्रस्ताव में कहा गया था। "इस आंदोलन का आवश्यक लक्षण यह है कि उसका स्वरूप स्वेच्छाप्रेरित है और उसने अहिंसक प्रक्रिया को स्वीकार किया है। इस प्रकार (इस आंदोलन में) व्यावहारिक और आर्थिक लाभ तथा सहकार और स्वावलंबन पर अधिष्ठित समाज-व्यवस्था के विकास के साथ नैतिक दृष्टि का संयोग है। ऐसा आंदोलन सब तरह की सहायता और प्रोत्साहन का पात्र है।" इस परिषद् के समय तक तीन हजार से अधिक ग्रामदान प्राप्त हो चुके थे, और सितम्बर १९६२ तक, जब विनोबाजी ने आसाम छोड़ा था, देश भर के ग्रामदानों की संख्या पाँच हजार से अधिक हो गयी थी।

आसाम से पूर्वी पाकिस्तान होते हुए विनोबाजी बंगाल आये थे। यहाँ पहुँचने पर ग्रामदान की कल्पना में कुछ परिवर्तन हुआ और उसका रूप पहले की अपेक्षा अधिक सरल किया गया। इसको 'अभिनव ग्रामदान' कहा गया। 'सुलभ ग्रामदान' इसी का कुछ परिवर्तित रूप है और बिहार का 'तूफान आंदोलन' इसी सुलभ ग्रामदान का रूप था और आज भी ग्रामदान का वही रूप है।

परिवर्तन का कारण और उसका रूप

इस परिवर्तन के कई कारण थे। ग्रामदान की प्रारंभिक कल्पना में पूर्ण स्वामित्व-विसर्जन और जमीन के पुनर्वितरण की बात थी। सैकड़ों गाँवों में जमीन का पुनर्वितरण किया भी गया। लेकिन व्यवहार में जो अनुभव हुए उनके कारण ग्रामदान के विचार में थोड़ा परिवर्तन आया। इन अनुभवों को इस प्रकार रख सकते हैं :—

१. जैसा कि विनोबाजी ने कहा है, पुराना ग्रामदान पूर्णतया समाज-प्रेरणा के अनुकूल था। लेकिन वह स्वार्थ-प्रेरणा के लिए उतना अनुकूल नहीं था। मनुष्य का जो स्वभाव है तथा रोज के जीवन में जिस प्रकार की स्वार्थ-भावना तथा स्वामित्व के प्रति जो मोह उसमें मिलता है, वह सहज नहीं छूटता। अतः पुराना ग्रामदान थोड़ा कठिन था। ग्रामदान को लोगों के मन में बैठाने तथा उसको स्वीकार कराने के लिए यह आवश्यक लगा कि स्वामित्व विसर्जन की प्रक्रिया धीरे-धीरे चले।

२. ग्रामदान में पूरी जमीन का ग्रामीकरण होता था और जमीन पुनः वितरित की जाती थी। अनुभव यह आया कि परिवार की सदस्य-संख्या के अनुसार भूमि-वितरण गाँव के लोगों के आपसी संबंधों में कटुता की भावना उत्पन्न करता था और उसके कारण ग्रामभावना, पारस्परिक स्नेह आदि, जिनका मूल्य दूसरी बातों से अधिक है, उत्पन्न नहीं होते थे।

अतः विनोबाजी के मन में 'सुलभ ग्रामदान' की बात आयी थी। उसकी शर्तें इस प्रकार हैं :—

१. ग्रामदान में शामिल परिवार अपनी कृषियोग्य भूमि का कम-से-कम बीसवाँ भाग गाँव के भूमिहीनों के लिए देता है।

२. गाँव में कुल जमीन की मालकियत तो ग्रामसभा की हो जाती है, किंतु भूमिहीनों के लिए निकाली गयी भूमि के बाद बची

हुई जमीन पर खेती करने का अधिकार किसान या उनके उत्तराधिकारी का रहता है। ग्रामसभा की अनुमति से वे अपनी भूमि को सरकार या सहकारी समिति के पास रेहन रख सकते हैं। ग्रामसभा अथवा ग्रामदान में शामिल किसी सदस्य-परिवार के हाथ बेच भी सकता है।

३. किसान अपनी शेष जमीन की उपज का चालीसवां हिस्सा या कोई अन्य भाग जो ग्रामसभा निश्चित करे, ग्रामकोष के लिए ग्रामसभा को देगा। नकद आय वाला अपनी मासिक आय का तीसवां भाग या कोई अन्य भाग जो ग्रामसभा निश्चित करे, नकद या श्रम के रूप में ग्रामसभा को देगा।

इस प्रकार जो पूंजी बनेगी उससे गांव की भलाई और विकास का कोई भी कार्य जो ग्रामसभा तय करे, किया जा सकेगा।

४. गांव के प्रत्येक वयस्क को शामिल कर ग्रामसभा गठित होगी जो गांव के सब लोगों की देखभाल करेगी। ग्रामसभा का संचालन, सभी प्रकार के निर्णय सर्वसम्मति अथवा सर्वानुमति से होंगे।

नये ग्रामदान में ग्रामकोष की जो बात है वह पुराने में नहीं थी। इसके अतिरिक्त इसमें ग्रामसभा पर अधिक बल है। पहली से यह आशा है कि लोगों में सतत त्याग की भावना और पारस्परिक सहानुभूति पैदा होती रहेगी। इसके तथा ग्रामसभा के कारण लोगों के बीच दीवारें टूटेंगी और आपस में निकटता उत्पन्न होगी। यह शक्ति का केंद्र बनेगी और गांव ग्रामस्वराज्य की ओर बढ़ेगा।

ग्रामदान के तीन चरण

ग्रामदान आंदोलन के तीन चरण माने गये हैं। १. ग्रामदान-प्रचार, २. ग्रामदान-प्राप्ति, और ३. ग्रामदान-पुष्टि। विनोबाजी ने प्रारंभ से ग्रामदान-प्राप्ति पर ज्यादा जोर दिया। इसके परिणाम-स्वरूप प्राप्ति और पुष्टि की दूरी बढ़ती गयी, और घोषणा के बाद का व्यावहारिक काम बहुत कम गांवों में हो सका है। आज जो

ग्रामदान के आँकड़े हैं वे लगभग सभी उन ग्रामों के हैं जिन्होंने घोषणापत्र को स्वीकार किया है। इस बात में भी प्रयास इक्के-दुक्के ग्रामों को प्राप्त करना न होकर, प्रखण्ड तथा जिले को प्राप्त करने का रहा है क्योंकि इससे वातावरण बनाने तथा विकास करने में सुविधा होती है।

प्राप्त आँकड़ों के अनुसार पूरे देश में ग्रामदान संख्या १,६८,०५८ है जिनमें १,२४२ प्रखंडदान हैं और ४७ जिलादान हैं। सबसे अधिक प्रखड और जिलादान बिहार में प्राप्त हुए। दूसरे नम्बर पर तमिलनाडु है और तीसरे पर उत्तर प्रदेश। पुष्टि का कार्य कुछ क्षेत्रों में, विशेष रूप से बिहार के कुछ क्षेत्रों में, सघन रूप से चल रहा है।

पुष्टि का कार्य काफी शक्ति मांगता है। बीघा-कट्ठा निकालना, ग्रामसभा गठित करना, ग्रामकोष निकालना इत्यादि सभी कार्य सतत प्रयास चाहते हैं। जमीन का प्रश्न कानून के साथ जुड़ा हुआ है। अतः देर इसके कारण भी लगती है। आवश्यकता तो इस बात की है कि गांव के लोग ग्रामदान की शर्तों को स्वतः पूरा करें। किन्तु इसके व्यापक प्रशिक्षण की जरूरत है। इसे लोकशिक्षण का नाम दिया गया है। इस दिशा में भी प्रयोग हो रहे हैं।

२. शान्तिसेना

त्रिविध कार्यक्रम का दूसरा अंग शान्तिसेना का है। शान्ति-सेना की कल्पना तो गांधीजी की ही देन हैं। उनका विचार था कि इसको हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों को रोकने और शान्ति बनाये रखने का काम करना है। इसके अतिरिक्त शान्तिकाल में यह सैनिक सभी रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगे रहेंगे जिससे दंगे होना ही असम्भव हो जाय। परन्तु वे अपने जीवन-काल में इसका संगठन नहीं कर पाये थे, यद्यपि विनोबाजी के शब्दों में, "गांधीजी शान्तिसेना के प्रथम सेनापति थे और प्रथम सैनिक भी। सेनापति के नाते उन्होंने आदेश दिये और

सैनिक के नाते उनका पालन करके वे चले गये।" उनके देहावसान के बाद फिर शान्तिसेना के संगठन की ओर ध्यान गया और इस दिशा में कुछ प्रयोग भी हुए थे, किन्तु इसका कार्य देशव्यापी नहीं हो सका था। इस प्रकार १९५७ तक शान्तिसेना का विचार अमूर्त-सा ही बना रहा। उस वर्ष राज्य-पुनर्रचना तथा अन्य कारणों से देश की परिस्थिति विस्फोटक हो रही थी। अतः विनोबाजी ने इसके विचार को फिर से जीवित किया, और अब 'शांतिसेना' सर्वोदय आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। इस समय, जैसा सर्व सेवा संघ के संदर्भ में पहले लिखा जा चुका है, उसकी एक महत्त्वपूर्ण समिति 'अ० भा० शान्तिसेना मण्डल' है। उसका मुख्य कार्यालय राजघाट, काशी में है और 'तरुणमन' नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकलती है।

शान्तिसेना के तीन उद्देश्य हैं—भारत में सभी स्थानों में हिंसा के विस्फोट को रोकना, शांति भंग होने पर उसका अहिंसक शक्ति से शमन करना और देश में ऐसा वातावरण बनाना जिससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सहकारिता बढ़े और युद्ध का अन्त हो। शान्ति-सेना का एक प्रतिज्ञा-पत्र है जिसपर हस्ताक्षर करके १८ साल से अधिक उम्र का कोई भी भारतीय नागरिक शान्तिसैनिक बन सकता है। उस प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार एक शान्तिसैनिक का विश्वास सत्य और अहिंसा पर आधारित समाज में, अहिंसात्मक साधनों में, मानव-मात्र की मूल एकता में तथा युद्ध को मानव-विकास में बाधक मानने में होना चाहिए। उसकी यह मुख्य प्रतिज्ञा होती है कि वह शान्ति के लिए प्राण की भी बाजी लगाकर काम करेगा, जाति, सम्प्रदाय, रंग आदि के ऊपर उठने का प्रयास करेगा, किसी युद्ध में भाग नहीं लेगा तथा नियमित रूप से कुछ समय मानव बंधुओं की सेवा में लगायेगा।

शान्तिसैनिक के अनुशासन में तीन बातें मानी गयी हैं—स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए व्यायाम या उत्पादक श्रम, स्वाध्याय और शान्ति के लिए कोई सेवाकार्य।

सामान्य - शान्तिसेना के अतिरिक्त उसके दो विशिष्ट अंग भी हैं—ग्राम-शान्तिसेना और तरुण शान्तिसेना । पहला ग्रामीण युवकों का संगठन है जिनकी आयु १८ से ३५ के बीच में होती है। इसका विशेष कार्य गांव में होनेवाले झगड़ों तथा अन्यायों का शान्तिमय ढंग से समाधान का प्रयास करना, गांव को रचनात्मक दिशा में मोड़ना तथा वहाँ अहिंसक शक्ति खड़ी करना है। तरुण शान्तिसेना का विशेषत: सम्बन्ध स्कूल तथा कालेज के छात्रों से है। वैसे कोई भी युवक तथा युवती, जिसकी अवस्था १६ से ३० है, इसका निष्ठापत्र भर सकते हैं। इसके कार्यक्रमों में शिविरों, अध्ययन-गोष्ठियों, अन्याय के प्रतिकार तथा शिक्षा में क्रान्ति पर विशेष बल है । इनसे यह भी अपेक्षा रखी जाती है कि वे ग्राम के पुनर्निर्माण-कार्य में तथा विशिष्ट क्षेत्रों में चल रहे शान्ति-कार्य के लिए एक वर्ष देंगे। ग्राम-शान्ति-सेना के संगठन का प्रयास ग्रामदान के सघन क्षेत्रों में किया जा रहा है, किन्तु इस दिशा में अभी कुछ ठोस कार्य नहीं हुआ है। तरुण शान्ति-सेना अधिक सक्रिय है। उसको नये निष्ठावान उत्साही युवक भी प्राप्त हो गये हैं। उनके शिविर भी होते हैं और अभी कुछ महीने पूर्व उन्होंने अकालग्रस्त क्षेत्रों में भी गांववालों के सहयोग से काम किया था।

अभी तक कई प्रकार के क्षेत्रों में शान्तिसेना ने कुछ काम किया है, यद्यपि उनको प्रयोगात्मक ही मानना चाहिए। सीतामढ़ी, अलीगढ़, मेरठ, जबलपुर, जमशेदपुर, राउरकेला इत्यादि में कौमी दंगों को बढ़ने से रोकने अथवा दंगे के बाद शान्ति का वातावरण बनाने का काम किया गया। कुछ बाढ़-क्षेत्रों, जैसे—महाराष्ट्र, और कुछ सूखा ग्रस्त क्षेत्रों, जैसे—बिहार में काम किया गया। केरल में विद्यार्थियों की हड़ताल का समाधान किया। बड़ौदा में राज्य पुनर्रचना के कारण हुए दंगों, मद्रास में काश्तकारों और भूस्वामियों में हुए झगड़ों तथा पश्चिमी बंगाल में नक्सलबाड़ी उपद्रवों के बाद शान्तिकार्य किया गया।

चीन-भारत संघर्ष के बाद भारत की उत्तरी सीमा पर आसाम, नेफा बिहार, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में शान्ति-केन्द्र स्थापित कर जनता में अहिंसक शक्ति के निर्माण का काम किया गया। आज भी वहाँ यह कार्य चल रहा है।

शान्तिसेना की प्राथमिक इकाई शान्ति-केन्द्र है जिसका निर्माण दो या अधिक शान्तिसैनिक मिलकर करते हैं। उसका सम्बन्ध जिला शान्तिसेना समिति, प्रादेशिक शान्तिसेना समिति और अखिल भारत शान्ति सेना मंडल के केन्द्रीय कार्यालय से रहता है। अद्यतन आँकड़ों के अनुसार देश में शान्ति-केन्द्रों की संख्या ९० और शान्ति-सैनिकों की ६९० है।

३. ग्रामाभिमुख खादी

यह त्रिविध कार्यक्रम का तीसरा अंग है। इसके पीछे गांधीजी का यह सूत्र है, "कातो, समझ-बूझकर कातो, कातें वे खद्दर पहनें, पहनें वे जरूर कातें।" इसका तात्पर्य यह है कि गांवों में खादी उत्पादन के पीछे मुख्य दृष्टि अपनी एक बुनियादी आवश्यकता पूरी करने की ही होनी चाहिए। आज की स्थिति में तो इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में ऐसी ही खादी जीवित रह सकेगी। यह खादी स्वदेशी धर्म के पालन में सहायक होगी और गांव के शोषण को रोककर ग्रामस्वराज्य की स्थापना में योगदान कर सकती है।

जैसा कि स्पष्ट है, ग्रामदान के संदर्भ में इसका महत्त्व निर्विवाद है। यदि उन गांवों में कोई नंगा, बेकार, भूखा नहीं रहना है, तो ग्रामोद्योगों को बढ़ावा देना अत्यावश्यक है, और खादी सबसे बड़ा ग्रामोद्योग है। किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अभी तक इस कार्यक्रम को सफल बनाने का कहने लायक कोई प्रयास नहीं हुआ है।

●